ब्रह्मचर्य की शक्ति

ब्रह्मचर्य की शक्ति

स्वामी रामतीर्थ

अरविन्द प्रकाशन, दिल्ली–६

BRAHMCHARYA KI SHAKTI

by SWAMI RAMTIRTH Price : 3·50

सम्पादक : श्यामजी गोकुल वर्मा

प्रकाशक : अरविन्द प्रकाशन, पानड़ी बाजार, दिल्ली-६

वितरक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी, आगरा-२

संस्करण : १९७१

मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे

स्वामी रामतीर्थ : एक दिव्य जीवन

तिलक, लाजपत राय, विवेकानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द, दयानन्द— ये थे वे चमत्कारी महापुरुष जिन्होंने उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न हो कर अपनी अदम्य तेजस्विता, विलक्षण बुद्धि और अपराजेय संकल्प के बल पर देश की काया-पलट कर दी थी और पुनर्जागरण की आँधी उत्पन्न की थी। इनमें स्वामी रामतीर्थ का जीवन अत्यन्त विलक्षण, प्रेरणादायक तथा स्फूर्तिदायक था।

स्वामी राम भारतीय पुनर्जागरण के मन्त्रद्रष्टा थे। वे रहस्यवादी कवि, वेदान्ती एवं योगी होते हुए भी कर्मठता में ही जीवन की सफलता मानते थे। अपने काल के बावन लाख साधुओं में वे सुन्दरतम कमल की भाँति थे। वे बड़े से बड़े कष्टों में भी हँसते रहते थे और कहा करते थे—"मैं हँसता हूँ और हँसूँगा, मेरी आत्मा हँसने के लिए बनी है।" स्वामी राम की आत्मा का ज्ञान और आनन्द उनके सम्मुख आने वाले व्यक्ति की सम्पूर्ण आत्मा में उतरने लगता था। उनके व्यक्तित्व में उन महान् आत्माओं का उच्च आदर्श दिखाई देता था, जिन्होंने किसी समय उपनिषदों की रचना की थी और वैदिक ऋचाओं का गान किया था। वे निर्भयता का पाठ पढ़ाते थे—

क्या तुम डरते हो ? किससे ?
ईश्वर से ? तब तो मूर्ख हो।
मनुष्य से ? यह तो कायरता है।
पंच भूतों से ? उनका सामना करो।
अपने आप से ? जानो अपने आप को—
कहो "अहं ब्रह्मास्मि"।

स्वामीजी ने उत्तर भारत में नव वेदान्त के प्रचार का शंखनाद किया।

कवि कविता किया करते हैं, परन्तु स्वामी राम के जीवन में वस्तुतः काव्य रस की धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है। उनके स्वभाव में हमें एक उमड़ता हुआ क्षण-क्षण बाहर फूट पड़ने वाला आह्लाद दृष्टिगोचर होता है। कठिन से कठिन कष्ट और घोरतम अभाव में भी उन्हें विषाद छू नहीं पाता। मिसेज पोलिन विटमैन के शब्दों में—

"राम की भाषा ऐसी थी जैसे नन्हे से पवित्र हृदय बालक की होती है। वे चिड़ियों की, फूलों की, बहते हुए झरनों की और हिलती हुई वृक्ष शाखाओं की भाषा में बातें करते थे।....वे इतने कोमल, प्रकृतिस्थित, शिशु सदृश्य, शुद्ध और श्रेष्ठ, सच्चे और लगन वाले थे कि जो भी सच्चे हृदय वाला सत्य का जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आया वह तृप्त हुए बिना न रहा। प्रत्येक व्याख्यान, प्रत्येक सत्संग के पश्चात् लोग उनसे प्रश्न करते थे और वे सदैव बड़ी स्पष्टता और संक्षेप में, बड़ी मधुरता और प्रेम से उनका उत्तर देते थे। वे आनन्द और शान्ति के भण्डार थे।"

स्वामी राम ने शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त की व्यावहारिक व्याख्या करके उसे भक्ति और कर्म तक ही नहीं, मानव सेवा तक व्यापक बनाया। जापान में, अमेरिका में, बगदाद में और लौट कर पुनः भारत में उन्होंने व्याख्यानों द्वारा अपने विचारों का प्रसार कर बुद्ध और शंकराचार्य की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा। वर्तमान नैतिक अधःपतन की निराशा भरी निशा में स्वामी राम का सन्देश अटल ध्रुवतारे के समान हमारा मार्ग दर्शन करने में सक्षम हो सकता है।

● ● ●

भूमिका

"हाय, आज भीष्म पितामह के देश मे ब्रह्मचर्य पर दो बाते कहनी पड़ती है।" स्वामी राम के वचन से हमे पता चलता है कि वे ब्रह्मचर्य का कितना महत्त्व समझते थे। उन्होने लिखा है—"हनुमान का नाम लेने और ध्यान करने से लोगो मे शौर्य और वीरता का संचार हो जाता है। हनुमान को महावीर किसने बनाया ? इसी ब्रह्मचर्य ने न।"

ब्रह्मचर्य का प्रताप वर्णन करते हुए स्वामी राम ने कहा है—"मेघनाद को मारने की किसी मे शक्ति न थी। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम ने भी यह मर्यादा दिखाई कि मै स्वयं राम हूँ, किन्तु मै भी मेघनाद को नही मार सकता। मेघनाद को वही मार सकेगा, जिसके अन्त.करण मे बारह वर्ष तक किसी प्रकार का मलिन विचार न आया हो।" और ऐसे वह लक्ष्मणजी ही थे।

अभिमन्यु जैसा तेजस्वी अद्वितीय नवयुवक क्यो मारा गया ? नेपोलियन क्यो परास्त हुआ ? सैमसन कैसे जजीरो मे जकड़ा गया—स्त्रियो के नेत्रो की विषमयी मदिरा के कारण।

ब्रह्मचारी तो ललकार कर कहता है—

दस जवानों की मुझमें है हिम्मत,
क्योंकि दिल में है इफ़्फ़त व अस्मत।

स्वामी राम ब्रह्मचर्य के सबसे प्रबल समर्थको मे से थे। उन्होने वैज्ञानिक रीति से समझाते हुए कहा है—"जैसे तेल बत्ती से ऊपर चढता हुआ प्रकाश में बदल जाता है, वैसे ही जिस शक्ति की अधोमुखी गति है, वह यदि ऊपर की ओर बहने लग पड़े, अर्थात् ऊर्ध्वरेतस् बन जाय, तो विषय-वासना रूपी बल ओज और आनन्द मे बदल जाता है।"

स्वामी रामतीर्थ ने मनुष्य जीवन की सफलता के उपायो पर गहन चिन्तन किया था। उनका विचार था—"सफलता के लिए पवित्रता तथा ब्रह्मचर्य की

नितान्त आवश्यकता है। यदि भारतीय जीवित रहना चाहते हैं, तो ब्रह्मचर्य धारण करें, अन्यथा कुचल जायेंगे।"

एक अन्य स्थल पर स्वामी राम ने कहा है—"सर आइज़क न्यूटन जैसा तत्त्व का अन्वेषक, जिस पर इंग्लैण्ड को इतना गर्व है, सतासी वर्ष जीता रहा। मृत्यु समय में वह पूरी तरह होश मे था, कारण—वह जितेन्द्रिय था, पवित्र विचारों का था। जिस तत्त्वज्ञ ने विश्व के तत्त्व ज्ञान मे बड़ा परिवर्तन ला दिया, वह कौन था? वह काट (Kant) था। वह बड़ा यती-सती था। उसके हृदय में कभी भी अपवित्र भावना नहीं आई थी। अमेरिका के हेनरी डेविड थोरो तथा जर्मनी के विख्यात तत्त्वज्ञ हर्बर्ट स्पेंसर—दोनो महान् जितेन्द्रिय थे।"

स्वामी राम ने इस पश्चिमी विचार का ज़ोरदार खण्डन किया है कि ब्रह्मचर्य की शक्ति कपोलकल्पित है। स्वामी राम के तर्क युक्तियो, प्रमाणो और दृष्टान्तो से परिपूर्ण हैं। उनसे हमें नवीन दृष्टिकोण प्राप्त होता है। आज के युग मे, जब हम समझते हैं कि इन्द्रियो को वशवर्ती रखना असम्भव है, स्वामी राम के विचार प्रेरणाप्रद, स्फूर्तिदायक, विचारोत्तेजक तथा उदात्त बनाने वाले सिद्ध होते हैं। स्वामी राम ने एक रूढ़िवादी की भाँति ब्रह्मचर्य का घिसा-पिटा समर्थन नही किया, बल्कि ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये हैं, जो आँखें खोलने वाले हैं।

—सम्पादक

१. ब्रह्मचर्य की शक्ति

धर्म के प्रकाश से ऋद्धि-सिद्धि

जहाँ पर सत्[१], प्रेम वा नारायण का निवास है, जिस हृदय में हरिनाम वा ब्रह्म[२] बस जाए, तो वहाँ शोक, मोह, दु ख, दर्द आदि का क्या काम ? क्या राजाधिराज[३] के खेमे के सामने कोई दासी फटक सकती है ?

सूर्य जिस समय उदय हो जाता है तो कोई भी सोया नही रहता, पशुओ की आँखे खुल जाती है, नदियाँ जो बर्फो की चादर ओढे पड़ी थी, उन चादरो को फेक कर चल पडती है । उसी प्रकार सूर्यो का सूर्य जब आपके हृदय मे निवास करता है, तो वहाँ शोक, मोह तथा दु:ख कैसे ठहर सकते है ? कभी नही, कदापि नही ।

दीपक जल पड़ने से पतंगे आप ही आप उसके आस-पास आने शुरू हो जाते हैं । चश्मा[४] जहाँ बह निकलता है, प्यास बुझाने वाले वहाँ स्वयं जाने लग पड़ते हैं । फूल जहाँ खुद खिल पड़ा, भँवरे आप ही आप उधर खिचकर चल देते है । उसी प्रकार जिस देश में धर्म या ईश्वर का नाम रोशन हो जाता है, तो संसार के सुख-वैभव[५] और ऋद्धि-सिद्धियाँ आप ही खिची हुई उस देश में चली आती हैं । यही कुदरत का कानून है, प्रकृति का नियम है । ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

---

१. सत्=सचाई ।

२ ब्रह्म=ईश्वर ।

३. राजाधिराज=बादशाह ।

४ चश्मा=झरना ।

५. वैभव=ऐश्वर्य ।

पड़ती हैं। उस भीष्म को ब्रह्मचर्य तोड़ने के लिए ऋषि-मुनि और सौतेली माँ जिसके लिए उसने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली अर्थात् प्रण किया था, उपदेश करती है कि तुम ब्रह्मचर्य तोड़ दो; राजमंत्री, नगर-जन, ऋषि-मुनि सब आग्रह करते हैं कि तुम अपना व्रत तोड़ दो; तुम्हारे विवाह करने से तुम्हारे कुल का वंश बना रहेगा, राज बना रहेगा इत्यादि-इत्यादि। किन्तु नवयुवा[1] भीष्म यौवनावस्था[2] में, जिस समय विरला ही कोई ऐसा युवक होता है कि जिसका चित्त बाह्य[3] सौन्दर्य[4] और चित्ताकर्षक[5] राग-रंग के झूठे जाल में न फँसता हो, उस समय यौवनपूर्ण भीष्म अथवा शूरवीर भीष्म यूँ उत्तर देता है, "तीनों लोक को त्याग देना, स्वर्ग का साम्राज्य छोड़ देना और उनसे भी कुछ बढ़कर हो उसे न लेना मंजूर है; परन्तु सत् से विमुख होना स्वीकार न करूँगा। चाहे पृथ्वी अपने गुण गन्ध को, जल अपने स्वभाव रस को, प्रकाश अपने गुण रूप को, वायु अपने गुण स्पर्श[6] को, सूर्य अपने प्रकाश को, अग्नि अपनी गर्मी व उष्णता[7] को, चन्द्र अपनी शीतलता को, आकाश अपने धर्म शब्द को, इन्द्र अपने वैभव को और यमराज न्याय को छोड़ दें, परन्तु मैं सत्य को कदापि नही छोड़ूँगा।

"मैं तीनो लोकों का त्याग करूँ और वैकुण्ठ का राज्य छोड दूँ, पर मैं सत् की मर्यादा नही छोड सकता। पंच तत्त्व, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र और यमदेव, भले ही अपनी विशेषता छोड़ दें परन्तु सत्य मेरा सरताज है।

---

१. नवयुवा=नौजवान।

२. यौवनावस्था=जवानी।

३. बाह्य=बाहरी।

४. सौन्दर्य=सुन्दरता।

५. चित्ताकर्षक=मन को अपनी ओर खींचने वाले।

६. स्पर्श=छूना।

७. उष्णता=गर्मी।

हनुमान का नाम लेने और ध्यान करने से लोगो मे शौर्य और वीरता आ जाती है। हनुमान को महावीर किसने बनाया ? -इसी ब्रह्मचर्य ने। मेघनाद को मारने की किसी मे शक्ति न थी। मर्यादा भगवान् पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने भी यह मर्यादा दिखलाई कि मै स्वयं[1] राम हूँ किन्तु मै भी मेघनाद को नहीं मार सकता। उसको वही मार सकेगा कि जिसके अन्त करण[2] में बारह वर्ष तक किसी प्रकार का मलिन[3] विचार न आया हो और वह लक्ष्मणजी थे।

विषय-भोग से चित्त की मलीनता

जिन-जिन लोगो ने पवित्रता अर्थात् चित्त की शुद्धि को छोडा, उनकी स्थिति खराव होने लगी। विजय उस मनुष्य की कभी नही हो सकती, जिसका हृदय शुद्ध नही।

पृथ्वीराज जब रणक्षेत्र को चला, जिसमे सैकडों वर्प के लिए हिन्दुओ की गुलामी शुरू हो गई, लिखा है कि चलते समय वह अपनी कमर महारानी से कसवा कर आया था।

नैपोलियन जैसा युद्धवीर जव अपनी उन्नति के शिखर[4] से गिरा, अडडडधम। लिखा है कि जाने से पहले ही वह अपना खून आप कर चुका था। खून क्या लाल ही होता है ? नही, नही, सफेद भी होता है। अर्थात् उस रणक्षेत्र[5] से पहली शाम को वह एक चाह मे अपने को पहले ही गिरा चुका था।

---

१. स्वय = खुद।

२. अन्त करण = चित्त।

३. मलिन = मैला।

४. शिखर = चौटी।

५. रणक्षेत्र = युद्धभूमि।

कुमार अभिमन्यु जैसा चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य के समान तेजस्वी[१], अद्वितीय[२] नवयुवक जब उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि[३] में अर्पण हुआ, और उस युद्ध में काम आया, कि जहाँ से भारत के क्षत्री शूरवीरों का बीज उड़ गया, तो युद्ध से पहले वासना का शिकार होकर आया था।

विषयों की इच्छा विद्या-प्राप्ति में बाधक

राम जब प्रोफेसर था, तो उसने उत्तीर्ण तथा अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की नामावली बनाई थी, और उनके भीतर की दशा तथा आचरण से यह परिणाम निकला था कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों या उसके कुछ दिन पहले विषयों में फँस जाते थे, वे परीक्षा में प्रायः फेल अर्थात् असफल होते थे, चाहे वे वर्ष-भर श्रेणी में अच्छे ही क्यों न रहे हों और वे विद्यार्थी जिनका चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहता था, वे ही उत्तीर्ण और सफल होते थे।

बाइबिल में, शूरवीरता में अति प्रसिद्ध सैमसन का दृष्टान्त आया है। मगर जब उसने स्त्रियों के नेत्रों की विषमयी मदिरा को चखा, तो उसकी समस्त वीरता और शौर्य[४] को उड़ते ज़रा देर न लगी। एक वीर नर ने कहा है—

> दस जवानों की मुझमें है हिम्मत।
> क्योंकि दिल में है इफ्फत व असमत॥
>
> —टेनीसन

---

१. तेजस्वी=तेज वाला।
२. अद्वितीय=जिसके समान दूसरा नहीं।
३. रणभूमि=युद्धभूमि।
४. शौर्य=शूरवीरता।

तेल-बत्ती का उदाहरण

जैसे तेल बत्ती के ऊपर चढ़ता हुआ प्रकाश में बदल जाता है, वैं
ही जिस शक्ति की अधोमुखी[१] गति है, वह यदि ऊपर की तरफ बहं
लगे अर्थात् ऊर्ध्वरेतस्[२] बन जाए, तो विषय-वासना रूपी बल ओजस
और आनन्द मे बदल जाता है।

अर्थशास्त्र में बहुधा आप सज्जनों ने पढा होगा कि पदार्थ-विज्ञान
वेत्ताओ के सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि किसी देश में जनसंख्या क
बढ़ जाना और भलाई का स्थिर रहना एक ही समय में असम्भव है
एक-दूसरे के विरुद्ध है।

२. ब्रह्मचर्य और सफलता

सफलता की शर्त ब्रह्मचर्य है। भले ही आप नये विचारों के हों या पुराने विचारो के, भले ही आपकी पुस्तकों ने उसका महत्त्व बतलाया हो या न हो—राम आपसे कहता है कि सफलता के लिए पवित्रता तथा ब्रह्मचर्य की नितान्त आवश्यकता है। यदि भारतीय बचे रहना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखें अन्यथा कुचल जाएँगे।

दीपक का उदाहरण

यह दीपक है। आपके सामने यह जल रहा है। यह क्यों जलता है? इसके मध्य भाग में तेल भरा हुआ है। यह तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढता है तथा ऊपर आकर प्रकाश के रूप मे बदल जाता है। अगर इसके तेल वाले हिस्से में कोई छेद हो जाए, तो इसका तेल शनैः-शनैः बह जाएगा। फिर इस दीपक से प्रकाश नही होगा।

यही अवस्था आपकी है। जिस मनुष्य का वीर्य नीचे नही गिरेगा, तो ऊपर चढ़कर मस्तिष्क मे पहुँचकर आत्मिक ज्योति[1] के रूप में प्रकट होगा। परन्तु यदि व्यक्ति इसके विपरीत आचरण करेगा, तो उसकी दशा तेल-हीन दीपक जैसी होगी।

जिनके शरीर से अपवित्र कृत्य नहीं होते, जिनके मन में अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होते, उनके भोजन का सार रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र बनकर, अन्त में शुक्र मस्तिष्क में चढ़ कर बुद्धिरूप में परिवर्तित हो जाता है।

---

1. आत्मिक ज्योति=आत्मा का प्रकाश।

इस प्रकार की अवस्था का अँग्रेजी के प्रख्यात कवि ने इस तरह वर्णन किया है—

My strength is as the strength of ten,
Because my heart is pure —Tennyson

—मेरी शक्ति दस मनुष्यो की शक्ति के समान है, क्योकि मेरा हृदय पवित्र है। —टेनीसन

ब्रह्मचर्य के बल पर अद्भुत कार्य करने वाले मानव

हनुमान इसलिए सबसे बड़ा वीर था क्योंकि वह जती-सती था। कहते हैं कि मेघनाद भारी योद्धा था। उसे वही मनुष्य मार सकता था, जिसके मन में बारह वर्ष तक कोई अपवित्र भाव नही आया हो। ऐसा श्री लक्ष्मण था। जितेन्द्रियता के कारण ही भीष्म का नाम 'भीष्म' प्रसिद्ध हुआ। सर आइज़क न्यूटन जैसा तत्त्व का अन्वेषक[१], जिस पर इंग्लैण्ड को इतना गर्व है, सत्तासी वर्ष तक जीता रहा। मृत्यु-समय में वह पूरी तरह होश में था, कारण—वह जितेन्द्रिय था पवित्र विचारों का था। जिस तत्त्वज्ञ[२] ने विश्व के तत्त्वज्ञान में परिवर्तन ला दिया, वह कौन था? वह कांट (Kant) था। यह बड़ा यती-सती था। इसके हृदय में कभी भी अपवित्र भावना नही आई थी। अमरीका के हेनरी डेविड थोरो तथा जर्मनी के विख्यात तत्त्वज्ञ[१] हर्बर्ट स्पेंसर—दोनों महान् जितेन्द्रिय थे।

इस समय अमरीका, इग्लैण्ड, जापान प्रभृति देश तरक्की कर रहे है। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि इन देशो के गृहस्थ भी आपके देश के जितेन्द्रियो की अपेक्षा पवित्र है। पहले तो उनके

---

१. अन्वेषक=खोजी।

२. तत्त्वज्ञ=तत्त्ववेत्ता, ज्ञानवान्।

यहाँ विवाह ही बडी आयु में होते है। उसके वाद उनकी महिलाएँ कैसी पढी-लिखी होती है, कि पुरुपो तथा नारियो की भेट होती है, तो वे श्रेष्ठ विपयों पर वात-चीत करते है। वे एक दूसरे की सत्सगति से फायदा उठाते हैं, कभी भी अपवित्र विचारों का मौका नहीं आता। इसके विपरीत, भारत की स्त्रियाँ पढी-लिखी नहीं होती। यहाँ स्त्री-पुरुप के मिलने का अर्थ ही अपवित्र विचार समझा जाता हे। यह ठीक भी है। जव उसे कुछ ज्ञान नही, तो उससे आप क्या वार्तालाप करेंगे ?

प्रतिदिन के जीवन में देखिए कि पवित्र भावनाओं का आपके कार्यों तथा विश्वासों पर क्या असर पड़ता है। यदि आपके विचार पवित्र हैं, यदि आप अपनी जीवन-शक्ति को सुरक्षित बचाये हुए हैं, तो आप शीघ्र सफल होंगे।

राम जब प्राध्यापक था, वह सफल तथा असफल छात्रों की सूची बनाता था तथा उनसे प्रश्न किया करता था कि परीक्षा से कुछ दिवस पूर्व उनकी कैसी मनोदशा थी। तव उससे भी राम ने यही परिणाम निकाला था कि जो छात्र परीक्षा पूर्व श्रेष्ठ तथा पावन विचार रखते थे, वे सफल होते थे। इनके विपरीत जो छात्र अपवित्र विचार रखते थे, वे सदा डरते रहते थे कि कहीं फेल न हो जाएँ, और वे अनुत्तीर्ण हो जाते थे।

भोग-विलास से पृथ्वीराज की पराजय

जैसे विचार मन में होते हैं, वैसा ही परिणाम भी होता है। प्रख्यात रणवीर पृथ्वीराज अनेक युद्धों में मुसलमानों को पराजित कर चुका था, परन्तु जब वह भोग-विलास में मग्न हो गया, तथा आपको आश्चर्य होगा कि अन्तिम बार जब वह युद्ध भूमि में गया तो उसको

कमर उसकी रानी ने कसी थी, परिणाम यह हुआ कि युद्ध भूमि में उसकी पराजय हुई।

नेपोलियन की पराजय

नेपोलियन की हिम्मत तथा वहादुरी का सिक्का समस्त विश्व पर जम गया था। परन्तु जव वाटरलू के युद्ध-क्षेत्र मे चला, तो उसकी पूर्व-सध्या को, उसने अपने को एक अपवित्र इच्छा मे गिरा दिया था। परिणामत उसकी भीषण पराजय हुई।

अभिमन्यु की पराजय

कुरुक्षेत्र सगम का विख्यात योद्धा, जिस दिन युद्ध मे मारा गया, उससे पूर्व-सन्ध्या को वह अपनी नई पत्नी के पास गया था।

अपवित्र कार्यों मे कुछ भी आनन्द नही है। जैसे गुलाव का फूल कितना खशबूदार होता है; परन्तु उसमे शहद की मक्खी भी रहती है। ज्योही आप उसे नाक से लगाये, मधुमक्खी नाक की नोंक पर डक मारती है। इसी तरह सासारिक सुन्दरता तथा तिरछी नजर वड़ी आकर्पक[1] प्रतीत होती है, वह चित्त चुराती है। परन्तु उसमें एक आध्यात्मिक[2] विप है, जो मनुष्य को उन्नति से वंचित[3] कर देता है।

अनुचित प्रेम, अनुचित काम-वासना, अनुचित सतीत्व भग करना आदि गुलाव के फूल की न्याई आकर्पक हैं; परन्तु उनमे जो मक्खी है, वह नाक की नोक पर डक मारती है।

---

१. आकर्षक=कशिशवाला।
२. आध्यात्मिक=आत्मा सम्बन्धी।
३. वंचित=महरूम।

जिन्हे सांसारिक प्रलोभन[1] परास्त नहीं करते, वही संसार को परास्त कर सकता है।

आध्यात्मिकता

सफलता की तीसरी शर्त आध्यात्मिकता है। एक बादशाह की कहानी है। उसने एक कमरे मे एक सींग लटकाया हुआ था। उस सींग के खोल मे पानी भरा हुआ था। बादशाह ने विज्ञापन[2] कर रखा था कि जो व्यक्ति सींग का पानी पीकर उसे खाली कर दे, उसे वह अपना सम्पूर्ण[3] राज्य दे देगा। कई लोग आये तथा उन्होंने पानी पिया; परन्तु वे सींग को खाली न कर सके। वह सींग देखने में तो छोटा-सा प्रतीत[4] होता था; परन्तु उसका सम्बन्ध सागर से था। इसीलिए वह खाली न होता था।

इसी प्रकार यद्यपि आपके शरीर छोटे-छोटे-से है, तथापि उनका सम्बन्ध सागरों के सागर परमेश्वर से है। जो मनुष्य इस सम्बन्ध को जाग्रत रखता है, स्थिर रखता है, उसकी शक्ति अथाह होती है। ईश्वर तो सत्यकाम[5] तथा सत्यसंकल्प[6] है अतः आपके अन्तरतम[7] में भी हर समय सत्य होना चाहिए। उस सत्य विचार की सदा विजय होती है।

---

१. प्रलोभन=लालच।
२. विज्ञापन=इश्तिहार (मुनादी)।
३. सम्पूर्ण=सारा।
४. प्रतीत होना=मालूम होना।
५. सत्यकाम=सच की चाह वाला।
६. सत्यसंकल्प=सच्चे निश्चय वाला।
७. अन्तरतम=हृदय।

रणजीतसिंह का उदाहरण

सिंह के तुल्य पराक्रमी महाराजा रणजीतसिंह अपनी सेना लेकर अटक नदी के पास पडे हुए थे। परले पार शत्रु-सेना थी। रात्रि का अन्धकार छाया हुआ था। किन्तु वहाँ कोई नौका न थी, जिससे वे पार उतर सके। कोई अन्य साधन भी विद्यमान न था। बड़ी कठिनाई थी कि क्या किया जाय ? सैनिको ने महाराजा के पास जा कर अपनी कठिनाइयाँ बतलाई। महाराजा तो इस विचार मे मग्न था—जैसा कि श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवत गीता मे कहा है—

सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धस्य युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

—गीता, अध्याय २, श्लोक ३८

—हे अर्जुन ! तू सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जय-पराजय को समान जानकर युद्ध के लिए उठ खडा हो जा। इस प्रकार करने से तू पाप का भागी नही होगा।

सो, महाराज रणजीतसिंह इसी विचार में मग्न था। उसे न विजय की प्रसन्नता थी, न पराजय का शोक। वह अपने ही विचार में लीन था। अपने धर्म-पालन मे मग्न था। उसने अपने सैनिको से कहा—

जाके मन में अटक है, वाको अटक यहाँ;
जाके मन में अटक ना, वाको अटक कहाँ ?

इतना सुनते ही फौज नदी मे कूद पड़ी और दूसरे पार पहुँच गई। उसे देखकर दुश्मन की हिम्मत टूट गई कि जब ऐसे विशाल दरिया को नाव आदि के बिना ये लोग पार करके आ गये, तो इनका मुका-

विला करना नामुमकिन है। बस, दुश्मन भाग गये और मैदान रणजीतसिंह ने जीत लिया।

फ्रैडरिक का उदाहरण

फ्रांस तथा जर्मनी के युद्ध में बादशाह फ्रैडरिक सर्वथा परास्त हो गया था। दुश्मन के सैनिक उसके किले में घुस आये थे और रंग-रेलियाँ मना रहे थे। परन्तु फ्रैडरिक को अपने पक्ष में ईश्वर के होने का दृढ़ निश्चय था। इसलिए उसने हिम्मत को हाथ से न छोड़ा। उसने अपने सैनिको को एकत्र किया। उनमे कुछ एक को एक तरफ भेज दिया कि तुम उस टीले पर जाकर खड़े हो जाओ। कुछ एक को दूसरी तरफ भेज दिया। इसी तरह उसने चारों तरफ अपने सैनिक भेज दिये। इसके अनन्तर पूरे साहस के साथ निधडक होकर वह किले मे जा घुसा तथा दुश्मनो के सैनिको से उसने कहा—"तुम लोग हथियार रख दो।" उन्होंने पूछा "क्यो ?" फ्रैडरिक ने कहा—"तुम नही देखते कि मेरी फौज सब तरफ से आ रही है तथा तुम लोग घेर लिए गये हो।" यह देखकर वे लोग त्रस्त हो गये। उन्होंने अपने शस्त्र रख दिये।

यदि आपका हृदय सत्य से परिपूर्ण है, तो एक दुश्मन क्या, समस्त विश्व आपके सामने शस्त्र रख देगा। यही विकट उत्साह है, जिससे भयंकर पराजय भी विजय के रूप में बदल जाती है।

सारी खुदाई एक तरफ, फ़ज्ले-इलाही एक तरफ।
न मँहगे पर, न सस्ते पर, नहीं मौकूफ गल्ले पर;
फतेह तो बस उसी की है, खुदा है जिसके पल्ले पर।

हाथी और सिंह में अन्तर

हाथी तथा सिंह के शरीर में कितना अन्तर होता है ? परन्तु

देखिए, सिह के उत्साह तथा साहस के कारण हाथी के लिए उसका मुकाविला करना कठिन होता है। हाथी को अपनी शक्ति पर विश्वास नही होता। इसीलिए वह झुण्ड बनाकर रहता है। सिह का शरीर छोटा है, परन्तु उसमे साहस भरा रहता है। वह अपने भीतर के ईश्वर—आत्मा को मारता नही; बल्कि उसे व्यावहारिक रूप मे प्रकट करता है।

चीन के एक बालक का आत्मविश्वास

चीन मे एक बालक इतना निर्धन था कि पढने के लिए उसे तेल तक न मिलता था। वह जुगनुओ को इकट्ठा करके, कपडे मे बाँधकर उनकी रोशनी मे पढता था। लोगो ने कहा—यह भद्दी चेष्टा क्यो करता है, क्या तू ही बादशाह का वजीर बनेगा ?

उसने उत्तर दिया—मेरे मन में इस तरह की तंरगे उठती है, आशा है एक दिन मै वजीर बनूँगा। सचमुच वह चीन का वजीर बना।

लोग कहते है—'वह काम कैसे करे ?' अरे भाई! आत्म हत्या या ईश्वर हत्या क्यो करते हो ? तुम शरीर नही हो, तुम आप अनन्त हो, फिर क्या और कैसे, क्यो पूछते हो ? क्या तुम्हे विदित नही कि जलस्थिति-विज्ञान (Hydrostatics) का एक सिद्धान्त है, जिसके द्वारा सारे समुद्र के पानी को तनिक सा पानी रोक सकता है। इस तरह **एक मानव समस्त विश्व को रोक सकता है, यदि वह अन्तःकरण के ईश्वरत्व पर दृढ़ हो जाए। तू कारणों का कारण है फिर सामान अथवा साधन क्यो खोजता फिरता है ?**

एक अनाथ बालक का आत्मविश्वास

स्काटलैण्ड का एक बालक वहाँ के अनाथालय से भागकर लन्दन

चला गया। सयोग से वह एक बाग में पहुँचा। वह बाग लण्डन के लार्ड मेयर का था। बालक वहाँ खेल में मग्न हो गया। अचानक एक बिल्ली उधर से निकली। बालक ने उसकी पूँछ पकड ली तथा उससे बातचीत करने लगा। इसी समय घण्टे की आवाज सुनाई पड़ी। बालक बिल्ली से बातचीत करता हुआ गाने लगा—

What docs t he mad bell say ?
Ton ! Ton !! Ton !!!
Whittington, Whittington,
The Lord Mayor of London !
—पगली घंटी क्या कह रही है ?
टन ! टन !! टन !!!
ह्विट्टिंगटन; ह्विट्टिंगटन;
लार्ड मेयर आफ़ लण्टन !

इसी समय संयोग से लण्डन का मेयर (महापौर) उधर आ निकला। उसने सारी बात सुनी। उसने लड़के से पूछा—तू क्या कर रहा है ? उसने उत्तर दिया—लार्ड मेयर आफ लण्डन का काम।

लार्ड मेयर प्रसन्नता से खिल गया। वह बालक को अपने घर ले गया। पढने के लिए उसने बालक को स्कूल मे प्रविष्ट करवा दिया। बालक ने बड़ी मेहनत करके खूब शिक्षा पाई। शनैः-शनैः उन्नति करता-करता एक दिन सचमुच वह लार्ड मेयर आफ लण्डन (लण्डन का महापौर) बन गया !

पापी का पतन

एक कवि अपनी विद्या में बड़ा कुशल था। उसने बहुत-सी कवि-ताओं की रचना की तथा उन्हें महाराज के पास ले गया। महाराज

उन कविताओ को सुनकर बहुत खुश हुए तथा उसे बहुत पुरस्कार[१] दिया। रानियो को भी कवि की वाणी बहुत प्रिय लगी। जब महाराज राजप्रासाद[२] में आए, तो उन्होने महाराज से इच्छा प्रकट की कि कवि को राजप्रासाद के समीप ही आवास[३] दे दिया जाए। दूसरे दिन महाराज ने कवि से पूछा—'कहाँ रहते हो?' कवि ने उत्तर दिया—'मै तो अन्धा हूँ।'

महाराज ने सोचा, यह देख नही सकता, अत इसे राजप्रासाद के समीप एक कमरा रहने के लिए देने मे कोई हानि नही।

वह कवि वहाँ रहकर नौकर-चाकरो को तग करने लगा। एक दिन उसने दासी से कहा—'लोटा उठा दो।' दासी ने कहा—'लोटा कहाँ है?' दोनो मे इस पर तू-तू मै-मै हो गई। कवि के मुँह से निकल गया—'वह सामने क्या पडा है? क्या तू उठाकर नही दे सकती?' बस, फिर क्या था, दासी दौडती हुई रनिवास[४] में गई तथा रनियो से बोली—"यह मरा तो सब कुछ देखता है, यह अन्धा नही है। यह हमे हमेशा घूरता है।" महाराज ने जब यह सुना तो उसे वहाँ से निकाल दिया। उसे दरबार मे आने से भी मना कर दिया। बाद में वह कवि सचमुच अन्धा भी हो गया था।

जहाँ चाह वहाँ राह

आप कहते है—'सामान नहीं, कैसे काम करें', परन्तु यह सब सकल्प

---

१ पुरस्कार=ईनाम।

२ राजप्रासाद=राजमहल।

३ आवास=रहने का स्थान।

४ रनिवास=रानियो का महल।

का खेल है। जब आपके अन्तःकरण में संकल्प (दृढ़ निश्चय) की शक्ति आ जाएगी, तो सारे सामान आपके सम्मुख स्वयं आ जा जाएँगे। दिव्य प्राकृतिक शक्तियाँ आपके लिए अपना स्वभाव बदल डालेंगी।

जैसा विचार वैसा मनुष्य

अच्छे विचारों वाले अच्छे बनेंगे, बुरे मनोरथों वा ले बुरे होंगे। जैसा विचार करोगे, वैसे बन जाओगे।

यदि आपके मन में पुष्प का विचार होगा तो आप पुष्प रूप (प्रिय) बन जाएँगे। यदि चंचल बुलबुल का ख्याल होगा, तो बुलबुल की तरह व्याकुल बन जाएँगे। दुःखों का विचार करने वाला दुःखों को और सुखो का विचार करने वाला सुखों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है

हर एक प्रार्थना की सुनवाई होती है। जो प्रार्थना अन्तःकरण से स्फुरित होती है, वह अवश्य स्वीकार की जाती है। जैसा आपका संकल्प होगा, उसे आपके अन्तःकरण की शक्ति अवश्य पूर्ण कर देगी। आप में ऐसी शक्ति मौजूद है जिसकी बदौलत आप देवताओं की समता कर सकते है। देवता का अर्थ है—प्रकृति की शक्तियाँ।

यदि आप वेदों के अनुकूल आचरण करें, तो देवों तक पहुँच सकते हैं। अपने आत्मविश्वास तथा निश्चय की शक्ति से आप प्राकृतिक शक्तियों को आकर्षित करके अपनी वशवर्ती बना सकते हैं। इस प्रकार आप देवताओं की समता कर सकते हैं। परन्तु आपने उन साधनों को भुला डाला है। जब तक आप उन साधनों पर अमल करते थे, तब तक आपके हृदय में उसी प्रकार के विचार सुदृढ़ थे। अतः उस समय वैसे ही परिणाम निकलते थे। परन्तु जब से आपने इन उपायों का

परित्याग किया, बुरे विचारों ने आपके हृदय में स्थान बना लिया, तब से आपकी दशा बदल गई।

जब हिन्दुओ मे यह विचार पैदा हुआ—'हमको नौकर राखोजी, हमको नौकर राखोजी'—

मै गुलाम, मै गुलाम, मै गुलाम तेरा,
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा।

—तब से वास्तव में वे नौकर और गुलाम ही हो गये।

और हिन्दुओ मे एक विशेष गुण यह है कि वे सदैव सच्चे होते है। अतएव उनकी स्वाभाविक सचाई इस दासता के विचार पर लग गई। कारण, उनका यही हार्दिक विचार था। अतएव उनकी मनोकामना पूर्ण हुई तथा वे विदेशियो के दास हो गये।

जैसा विचार करोगे, वैसा अपने को पाओगे

महात्मा बुद्ध ने भी यही शिक्षा दी है। अतएव न अपने बारे में तथा न और किसी के बारे मे अपने मन मे हीन विचार लाओ। भीतर तथा बाहर—सर्वत्र परमात्मा ही परमात्मा को देखो। मुहम्मद साहब के मन में यह बात समा गई थी, अत उन्होने सिखलाया था— 'ला इलाह इल्लिल्ला'= ईश्वर के सिवाय कुछ नही है। हजरत ईसा मसीह की प्रत्येक धमनी मे यही विचार दौड रहा था—'I and my father are one'=मै तथा मेरा पिता (परम पिता परमात्मा) एक ही है। अब भले ही लोग उसे समझे अथवा न समझे, सत्य बात यही है।

शक्ति है आत्मबल की, शक्ति है विश्वास की। शक्ति है निश्चय या यकीन की। फिर भी आप कहते है कि सामान की आवश्यकता है? सामानों के सामान तो खुद आप हो। इस विचार को ब्रह्मविद्या कहा जाता है।

जिस तरह किसी सुन्दर बालक चेचक रोग से सर्वथा कुरूप हो जाता है तथा उसके प्राण संकट मे पड़ जाते है, तब उसे कुछ लाभ गौ के थन के लिफ (Lymph) के टीके से होता है, उसी प्रकार हिन्दू जाति भी अविद्या की चेचक से पीड़ित होकर कुरूप होती जाती है, उसका अन्त समीप आया प्रतीत होता है। इसलिए उसे भी टीका लगाने की जरूरत है। इस टीके के लिए लिफ (Lymph) कहाँ से प्राप्त होगा? गौ का अर्थ है 'उपनिषद्' (सर्वोपनिषदो गाव.) तथा वह लिफ उपनिषद् से प्राप्त किया जायगा। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मविद्या उपनिषदों से सीखकर उस पर आचरण कीजिए। तब यह अविद्या रूपी चेचक दूर हो जायगी।

लोगो का कहना है कि इतिहास पढ़ने से यह विदित होता है कि जो जाति एक बार उन्नति करके फिर अवनति को प्राप्त हुई हो, वह फिर दुबारा उन्नति नही कर सकती।

परन्तु यह विचार कुछ तुच्छ तथा गलत है। यही एक सहस्र वर्ष का इतिहास तथा उस पर यह अभिमान? अरे भाई! यह तो एक युग का भी पूरा इतिहास नही है।

कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता

प्राकृतिक विकास का इतिहास अध्ययन करने से विदित होता है कि कोई पदार्थ नष्ट नही होता, किसी न किसी रूप मे वह विद्यमान रहता है। (केवल रूप ही बदलता है) कहा गया है—

'हर शाख रंग आमेजी दर फ़स्ले-ख़िजाँ अंदाख्ता।'

—प्रत्येक शाखा पतझड़ के मौसम मे फली-फूली है, कितना आश्चर्य है!

और देखिए, प्रकृति आपको बतलाती है—तारे पूर्व से पश्चिम

को जाते है, और फिर पश्चिम से पूर्व को लौट आते है। यही दौर या चक्र चलता है।

ठीक इसी तरह सौभाग्य का सितारा पूर्व से पश्चिम को गया, तथा वहाॅ से पुनः पूर्व को वापिस आ रहा है। देखिए एक युग था जब भारत का सितारा बुलन्द था। वहाँ से वह पश्चिम की तरफ चला, फारस में पहुँचा, उसके उपरान्त आस्ट्रिया आदि की बारी आई। वहाँ से यूनान (ग्रीस) में पहुँचा। यूनान से रोम पहुँचा। रोम के अनन्तर स्पेन की बारी आई। वहाॅ से इग्लैड पर कृपा हुई। वहाॅ से वह अमेरिका गया। इस समय अमेरिका का पश्चिमी भाग कैलिफोर्निया बहुत उन्नति कर रहा है। वहाॅ से वह जापान में आया—फिर आप कैसे कह सकते है कि अब भारत की बारी नही आएगी?

आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

३. ब्रह्मचर्य का उपाय

प्राणायाम की विधि

सर्वप्रथम हम प्राणायाम पर विचार करेंगे। प्राणायाम का शब्दार्थ है 'प्राण (श्वास) को वश में करना'। योग सम्बन्धी हिन्दू-ग्रन्थों में प्राण-नियंत्रण[1] के आठ मुख्य ढग बताये गये है। परन्तु राम आपके सम्मुख केवल एक ही ढंग प्रस्तुत करेगा। प्राणायाम श्वास के नियन्त्रण की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रीति है। प्रश्न है प्राण को वश में करने से क्या लाभ ? उत्तर में राम का कथन है, "प्राण को संयमित करने का ढग सीखो तथा इसे प्रयोग में लाओ। आपको अपने अभ्यास द्वारा स्वयं ही पता चल जायगा कि यह अत्यधिक लाभकारी है।" जब कभी आप खिन्न हों, उदास हो, विपण्ण हों, दु:खी हों, उत्साह-हीन हो—आप प्राणायाम कीजिए, आप देखेंगे कि आपको फौरन शान्ति मिलती है। प्राणों के नियन्त्रण का यह लाभ तुरन्त ही होता है।

प्राणों का आयाम

जब कभी किसी विषय पर लिखने लगें, जब किसी काम के बारे में विचार करने लगें और जब भी आप देखें कि आप अपने विचारों पर काबू पाने में असमर्थ हो रहे हैं, तो आप प्राणों का आयाम कीजिए। इससे फौरन आपको शक्ति प्राप्त होगी। इतनी शक्ति कि स्वयं आप को आश्चर्य होगा। आपको यह अनुभव होगा कि प्रत्येक वस्तु ठीक

---

१. प्राण-नियन्त्रण=प्राणों को वश में करना।

स्थान पर है, प्रत्येक वस्तु अपनी वाछनीय स्थिति मे है। तब आपको कुछ भी अव्यवस्थित या उखडा-पुखडा प्रतीत नहीं होगा।

प्राणायाम से लाभ

प्राणायाम के लाभ निम्नलिखित है—इससे तन की अनेक बीमारियाँ दूर होती है। उदरशूल[1], शिरोवेदना[2], हृदय-पीडा आदि रोग दूर हो जाते है।

प्राणायाम क्या है? एक विशेष विधि से प्राणो का नियमन[3]। राम आपके सम्मुख ऐसा उपाय प्रस्तुत करता है, जो समय की कसौटी पर पूरा उतर चुका है। जो हिन्दुस्तान मे अत्यन्त प्राचीन काल से चला आया है तथा आज भी प्रचलित है। अत्यन्य प्राचीन काल से इसका अभ्यास किया जाता रहा है। जिस मनुष्य ने भी इसका अभ्यास किया है, इसे लाभकारी पाया है।

प्राणायाम के लिए आसन

प्राणायाम करने के लिए अत्यन्त सुखदायी आसन मे—सरल साधारण स्थिति मे बैठना चाहिए। एक पैर दूसरे पर चढाकर, पालथी मार कर बैठना अत्यन्त सुखदायी आसन है, हाँ, पश्चिमी देशवासियों के लिए वह अवश्य कठिन है। इसलिए कोई चाहे तो आराम कुर्सी पर वैठ सकता है।

अपना शरीर सीधा रखिए। रीढ की हड्डी को कडी करके रखिए। सिर ऊपर रखिए। वक्ष बाहर फुलाकर रखिए। आँखे सामने रखिए। दाये हाथ का अँगूठा दाये नथुने पर रखिए। अब बाये नथुने

---

१. उदरशूल=पेट दर्द।

२. शिरोवेदना=सिर दर्द।

३. नियमन=नियम मे बाँधना।

से शनैः-शनैः श्वास भीतर खींचिए। उस समय तक धीरे-धीरे साँस खींचते रहिए जब तक आपको आराम मिलता रहे। जब तक सांस आराम से खींच सकें, तब तक खींचते रहिए। सांस अन्दर खींचते हुए, मन को शून्य मत होने दीजिए। मन को एकाग्र करके इस विचार पर लगा दीजिए कि सर्वशक्तिमान्[1], सर्वव्यापक[2], सर्वान्तर्यामी[3] परमात्मा को आप अपने भीतर ग्रहण कर रहे हैं। मानो आप परमेश्वर, नारायण, सम्पूर्ण विश्व का पान कर रहे हैं।

जब आपको प्रतीत हो कि आपने अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण श्वास खींच लिया है, तब उँगली से बायें नथुने को बन्द कर दीजिए। जब आप दोनों नथुने बन्द कर लें, तब आपके मुँह से सांस बाहर न निकलने पाये। अन्दर खींची हुई सांस अपने फुफ्फुसों, उदर तथा पेडू में रहने दीजिए। सब छिद्र वायु से भरे हों, उस वायु से भरे हों जिसे आपने भीतर खींचा है। जब श्वास द्वारा खींचा वायु आपके अन्दर रहे, तब चित्त को शून्य मत रहने दीजिए, चित्त को इस विचार में निमग्न कीजिए—"मैं परमेश्वर हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, मैं सर्वान्तर्यामी हूँ। मैं विश्व के अणु-परमाणु[4] में व्याप्त हूँ। मैं पूर्ण हूँ।"

इस विचार की अनुभूति में अपनी समस्त शक्तियों को नियोजित कर दीजिए। अपनी ईश्वरता की अनुभूति प्राप्त करने में अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगा दीजिए। जैसे-जैसे श्वास आपके शरीर में परिपूरित[5] हो जाए, वैसे-वैसे यह अनुभव कीजिए—"मैं सत्य हूँ, मैं दिव्य शक्ति हूँ, मैं संसार में पूर्ण हूँ।"

---

१ सर्वशक्तिमान=सब शक्तियों वाला।
२ सर्वव्यापक=हर जगह मौजूद।
३. सर्वान्तर्यामी=सबके मन की बात जानने वाला।
४. अणु-परमाणु=कण-कण।
५. परिपूरित होना=भरना।

इस पर अपने मन को एकाग्र कीजिए। जब आपको प्रतीत हो कि अब आप श्वास को एक पल के लिए भी रोकने मे असमर्थ है तो बायाँ नथुना बन्द रखकर दायाँ नथुना खोल दीजिए। अब दाये नथुने से शनै -शनै. श्वास को बाहर निकालिए। मन को शून्य होने दीजिए, उसे उक्त विचार मे लगाये रखिये।

मन को अनुभूति होने दीजिए कि ज्यो-ज्यो श्वास बाहर जा रहा है, त्यो-त्यो उदर की समस्त मलीनता नष्ट हो रही है। उसके साथ ही सारी दुष्टता, दुर्गन्ध, अविद्या बाहर जा रही है। सारी दुर्बलता, अविद्या, भयातुरता ,चिन्ता, पीड़ा, आर्त्तता नष्ट हो रही है। सब बाते समाप्त हो गई, मिट गई।

साँस बाहर निकालने के बाद

जब आप साँस बाहर निकाल चुके, आराम से जितनी साँस बाहर निकाल सके, उतनी निकाल चुके, तो जब आपको यह प्रतीत हो कि अब और साँस बाहर नही निकाल सकते, तब दोनो नथुने खुले रखते हुए प्रयत्न कीजिए कि जरा-सी भी वायु अन्दर न जाने पाये। जितनी देर हो सके वायु को अन्दर जाने से रोकिए। जब आपके यत्न द्वारा वायु नथुनों से फुफ्फुसो में न जाने पाती हो, उस समय भी चित्त को ध्यान मे लगाइए, उसे यह भी न होने दीजिए—यह अनुभव करने दीजिए, कि मै परमात्मा हूँ। सम्पूर्ण काल वस्तु का देश मेरा है और मै इनसे परे हूँ। मै इस विश्व के किसी भी पदार्थ द्वारा परिमित-नही हूँ। मै कल्पनातीत हूँ। मै विचारातीत हूँ। सबसे परे हूँ। अपरिमित हूँ, सब मे व्याप्त हूँ। मै सीमाबद्ध नही हूँ।

प्राणायाम में चार प्रक्रियाएँ

इस प्राणायाम मे अब तक आपके सम्मुख चार प्रक्रियाएँ उप-

स्थित की गई हैं—दो मानसिक और दो शारीरिक। प्रथम प्रक्रिया अन्दर सांस खीचने की थी। भीतर श्वास खीचने का अश शारीरिक क्रिया थी। तथा यह विचार करना कि मैं परमात्मस्वरूप हूँ, मानसिक क्रिया थी।

इसके वाद जव तक आपने श्वास को फुपफुसो में रोके रखा तो वह शारीरिक[1] क्रिया थी। तथा अपने आपको समस्त विश्व में परिव्याप्त[2] समझने की क्रिया मानसिक क्रिया थी।

तृतीय प्रक्रिया में अपने दाये नथुने से श्वास धीरे-धीरे वाहर निकाली, अपनी समस्त दुर्वलता दूर कर दी, आपने कोई आगुरी प्रलोभन पास न आने देने की प्रतिज्ञा की। इसमे श्वास वाहर निकालना शारीरिक क्रिया थी तथा अपने दोपो को वाहर निकालने की क्रिया मानसिक क्रिया थी। यह चौथी क्रिया थी।

इसके वाद आप कुछ देर विश्राम कर सकते हैं। इस समय आप श्वास को स्वाभाविक विधि से नथुनों मे जाने-आने दीजिए। फिर उसी प्रकार सांस को शीघ्र अन्दर खीचिए तथा वाहर निकालिए, जैसे दूर तक चलने के वाद स्वाभाविक होता है। यह श्वास का तीव्र गति से भीतर जाना और वाहर निकलना स्वयं एक प्राणायाम है। इसे नैसर्गिक प्राणायाम कह सकते है। इस तरह आराम करने के कुछ देर वाद थोड़ी देर तक अपने फुपफुसो को भीतर श्वास खीचने तथा वाहर श्वास निकालने दीजिए।

इसके अनन्तर पुन. प्राणायाम आरम्भ कीजिए। अव इस वार दाये नथुने से श्वास अन्दर खीचना आरम्भ कीजिए। पहले की तरह मानसिक क्रिया जारी रखिए। हां, दायें नथुने से सांस भीतर खीचिए

---

१. शारीरिक क्रिया=शरीर सम्बन्धी हरकत।
२. परिव्याप्त=पूरी तरह फैला हुआ।

बाये नथुने को बन्द रखिए । ऐसा करते हुए इस प्रकार विचार कीजिए—मैं साँस के सग परमात्मा को भीतर ग्रहण कर रहा हूँ । शक्ति के अनुसार श्वास अन्दर खीच लेने के पश्चात् जब तक आराम से सम्भव हो, तब तक श्वास को अन्दर रोक कर रखिए । जिस समय श्वास आपके अन्दर रहे, तब तक ऐसा अनुभव कीजिए—"मै समस्त विश्व का जीवन हूँ, प्राण हूँ । विशाल ससार को पूर्ण जीवन प्रदान करने वाला मैं हूँ ।"

इसके उपरान्त बाये नथुने से धीरे-धीरे क्रमश· श्वास बाहर निकालिए । इसके साथ ही इस प्रकार चिन्तन कीजिए—"मै सम्पूर्ण दुर्बलता, अज्ञान, गन्दगी, बदबू बाहर निकाल रहा हूँ । जिस प्रकार सूर्योदय से धुन्ध, कुहरा, सर्दी और अन्धकार मिटते है, उसी प्रकार मैं भी अपने विकार बाहर फेक रहा हूँ ।

इसके अनन्तर साँस को अपनी नाक से बाहर रखने (रोकने) का यत्न कीजिए और प्रत्येक क्रिया का समय बढाने का प्रयास कीजिए।

कुल मिलाकर इस प्रक्रिया मे आठ क्रियाएँ है । पहली चार क्रियाओ से आधा प्राणायाम सम्पन्न होता है । दूसरी चार क्रियाओ से उत्तरार्ध पूरा होता है ।

इन क्रियाओ का अभ्यास करते-करते प्राणायाम का काल बढाते जाइए । प्राणायाम मे एक स्वर-ताल-गति है । जिस प्रकार पेडुलम दोनो तरफ झूला करता है, उसी प्रकार प्राणायाम मे आप अपने श्वास को पेडुलम के समान बनाते है । ताल मे बँधी चाल से चलाना होता है । इसके बाद आप अनुभव करेंगे कि आपको कितनी शक्ति प्राप्त होती है । इससे आपकी अधिकांश बीमारियाँ आपको छोड़कर भाग जाएँगी । यदि प्राणायाम का ठीक-ठीक (यथा विधि) निरन्तर अभ्यास किया जाए, तो हर एक रोग दूर हो सकता है ।

प्राणायाम में सावधानी

जब लोग प्राणायाम का अभ्यास करना आरम्भ करते है, तो उनमें से अधिकतः रुग्ण हो जाते हैं। इसका कारण यह होता है कि वे स्वाभाविक पद्धति से प्राणायाम नही करते। वे इतने सैकिण्ड तक श्वास भीतर खीचते और बाहर निकालते है कि रोगी हो जाते है। प्राणायाम की प्रत्येक क्रिया आपको स्वाभाविक बनकर करनी चाहिए। अपने को किसी भी दशा मे थका मत डालिए। शक्ति से अधिक देर तक प्राणायाम मत कीजिए। जहाँ जरा सी भी थकान प्रतीत हो वहीं रुक जाइए। ठहर जाइए। आप किसी के बंधे हुए नही हैं। दूसरे दिन पुन. अधिक सावधानता से शुरू कीजिए। सदा अपनी शक्ति को सुरक्षित बचाकर रखिए। विवेक से सभी काम कीजिए।

प्राणायाम की सबसे उपयुक्त विधि ऊपर लिख दी है। इसमें सब प्रकार के शारीरिक व्यायाम का लाभ आ जाता है।

जो मनुष्य यह समझते है कि प्राणायाम मे कोई गुप्त रहस्य है, कोई दिव्य उद्देश्य निहित है—वे भूल करते है। जो यह समझते है कि प्राणायाम का फल उच्च कोटि के आत्मानुभव को प्राप्त करना है, वे भी गलती पर है। इसमें कुछ रहस्य, अलौकिकता[1] या चमत्कार नही है। यह एक साधारण व्यायाम है। जैसे आप शारीरिक कसरत करते हैं, उसी तरह फुफ्फसों का व्यायाम मात्र है।

एक बात और, जिस समय आप श्वास अन्दर खींचना या बाहर निकालना आरम्भ करें, तब अपने पेडू को—शरीर के निचले भाग को खिचा (तना) रखिए। इससे आपको बहुत लाभ होगा। इसके बाद जब आप श्वास अन्दर खींचें या बाहर निकालें, तो श्वास को अपने पूरे पेट मे दौड़ने दीजिए। ऐसा नही होना चाहिए कि श्वास

१. अलौकिकता = दिव्यता, गैबीपन।

केवल आपके हृदय तक ही जाए और उसके नीचे न जाने पाए। श्वास नीचे गहरे-से-गहरा उतरने दीजिए। अपनी देह का हर एक छिद्र (खाली स्थान), अपने शरीर का ऊपर वाला आधा भाग हवा से भर जाने दीजिए।

वेदान्त की विधि से जो लोग अपना चित्त एकाग्र करना चाहते है, उन्हे ॐ का जाप करने से पहले, वेदान्त-साहित्य मे अधीत किसी विधि पर चित्त को एकाग्र करने से पहले, प्राणायाम करना बहुत लाभकारी होगा।

चित्त को एकाग्र करने की विधि—'सोऽहम्'

इस कागज को अभी पढने की आवश्यकता नही। राम आपको बतलाएगा कि इसे किस विधि से पढना चाहिए। क्या आपको विदित है कि इसके पढने की विधि जानने से आपका हित होगा। आप इस विधि को अपनी प्रार्थनाओ मे प्रयुक्त कर सकते हैं। यह प्रार्थना है, जो आपको अपना ईश्वरत्व अनुभव करने योग्य बनाती है। यह 'सोऽहम्' शीर्षक लेख है। इसे आप हर समय अपनी जेबो मे रख सकते है। जिस समय आपको अपनी चित्तवृत्ति[1] अपने विपरीत प्रतीत हो, जब आप चिन्ता, परेशानी, फिक्र और भय से आक्रान्त[2] हो, तब इस कागज को लेकर एकान्त में जा बैठिए। इसे इस विधि से पढिए—

आराम से बैठ जाइए। जैसे कि आप प्राणायाम के समय बैठते है। आप चाहे तो आँखे बन्द कर लीजिए। फिर प्रार्थना को भावना से आरम्भ कीजिए।

---

१ चित्तवृत्ति=मन की हालत।

२ आक्रान्त—घिरा हुआ।

"केवल एक ही तत्त्व है—ॐ ! ॐ !! ॐ !!!"

इसे पढ़िए तथा अब कागज को एक तरफ रख दीजिए। बस, विचार कीजिए—"एक ही तत्त्व है—ॐ।" यही सत्य है।

जब आपको विश्वास हो जाए कि सत्य है, तो इसका अनुभव कीजिए। भाव भरी भाषा में कहिए—

'बस केवल एक ही सत्य है—ॐ'

अपने सम्पूर्ण, अन्तःकरण से—पूरे मनोयोग से कहिए—तथा इसी कल्पना मे डूब जाइए—विलीन हो जाइए।

'बस, केवल एक ही सत्य है—ॐ ! ॐ !! ॐ!!!'

इससे क्या पता चलता है ? इससे पता चलता है कि आपका मन 'केवल एक ही सत्य है' के विचारों मे आपका मन निमग्न हो गया। इसके उपरान्त केवल एक शब्द 'ॐ' का उच्चारण कीजिए। यह शब्द सारी कल्पना का प्रतिपादक[1] है।

ॐ नाम पवित्रों का पवित्र है, मंगलों का मंगल है। यह परमात्मा की परम शक्तियों का प्रतीक है। इसका उच्चारण (जाप) कीजिए। और उस समय केवल एक ही सत्य की कल्पना को अन्तःकरण से अनुभव कीजिए। जिस समय आपके ओष्ठ ॐ नाम का उच्चारण कर रहे हों—उस समय अपने सम्पूर्ण चित्त को एक ही कल्पना का अनुभव करने दीजिए—

'केवल एक सत्य है—ॐ'

इसका स्थूल अर्थ यह है कि यह सम्पूर्ण दृश्य, यह सम्पूर्ण भेदमय विश्व सत्य नहीं है—सत्य केवल एक है—अन्य सारी परिस्थितियाँ सत्य कदापि नहीं।

---

१. प्रतिपादक=प्रगट करने वाला, कहने वाला।

सत्य केवल एक है तथा ये बेचैन—व्याकुल बनाने वाली परिस्थितियाँ सत्य नही है ।

जिन्होने इस प्रयोग का परीक्षण नही किया, जिनकी शक्तियाँ त्रस्त हो गई हैं, केवल वे ही इस सत्य की सत्ता से इन्कार कर सकते है ।

यह सिद्धान्त भी उसी प्रकार अमल में लाने योग्य है, जितना कि विज्ञान की प्रयोगशाला (लेबोरेट्री) में किया गया कोई प्रयोग ।

यह ध्रुव सत्य है कि जब आप अपने मन को पिघला देते है—द्रवित कर देते हैं, जब आप अपने तुच्छ व्यक्तिगत 'अह' को परमात्म-तत्त्व मे विलय कर देते है, तब क्या फल होता है ? परिणाम यह होता है, नजरथ के ईसा के शब्दो की तरफ ध्यान दीजिए, परिणाम यह होता है कि यदि सरसो के बीज के बराबर भी विश्वास आप मे हो, तो आप यदि पर्वत को आने की आज्ञा दे तो पर्वत तुरन्त चला आएगा ।

इसी सत्य का आप जीवन मे प्रयोग करे । इसी सत्यानुभूति[1] को स्वय प्राप्त करे, इसके बाद आपके सामने आये सारे सकट, क्लेश, दु ख दूर हो जायेगे । वे विवश होकर दूर हट जायेगे ।

आप आत्म-तत्त्व की बजाय बाहरी व्यवसाय मे अधिक विश्वास रखते है, आप ससार को परमात्मा की अपेक्षा अधिक सत्य मान लेते है, बाह्य व्यापारो (कर्मो) के बारे में अपने मोह के कारण आपने अपने को एक प्रकार की जडता मे जकड़ लिया है, इसी कारण आपको नाना प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक व्याधियो ने घेर लिया है ।

जिस समय आपका मन बहुत परेशान हो, उस समय इस कागज को उठाकर पढिए—

---

१. सत्यानुभूति=सच्चाई का अनुभव ।

'बस केवल एक सत्य है—ओ३म्'

यह एक उक्ति उन सभी नाम-मात्र सच्चाइयों से अधिक श्रेष्ठ सच्चाई है, जो सम्बन्धियों के द्वारा शनैः शनैः आपके कान में भर दिये जाते हैं। उनमे सत्य नाममात्र को ही होता है। परन्तु आप उन्हें तथ्य मानते है—वास्तव में यह मिथ्या-भ्रम तथा मायाजाल होता है।

इन्द्रियो के जादू ने आपको अपना दास बना रखा है। उनकी छलना मे न आइए। एक मनुष्य है, जो आप मे दोष निकालता है, आपकी आलोचना करता है, दूसरा मनुष्य आपको बुरे वचन कहता है, गालियाँ देता है।

तीसरा मनुष्य आपकी चाटुकारी करके आपके 'अहं' को पुष्ट करता है।—ये वचन कुछ भी सत्य नही हैं।

वास्तविक सत्य है—ॐ। इसी का स्मरण कीजिए इसी का जाप करते हुए आप अन्य सभी विश्वासो को निकाल बाहर कीजिए। दृश्यमान[1] रूप-जगत् की सभी परिस्थितियों को उड़ा दीजिए।

अपनी समस्त शक्तियों को, अपने सम्पूर्ण बल को इसी तथ्य में निहित कर दीजिए कि केवल एक ही सत्य है—ॐ! ॐ!! ॐ!!!

इस मन्त्र के पाठ मात्र से आपका चित्त प्रसन्न, प्रफुल्लित तथा आनन्दमग्न हो जाएगा। आपके सारे कष्ट, सम्पूर्ण यातनाएँ, समस्त कठिनाइयाँ दूर भाग जाएँगी और आप मुक्तता का अनुभव करेंगे।

परन्तु यदि आपको और आगे पढ़ने की आकांक्षा हो, तो आप सहर्ष पढ़ें। अन्यथा, यदि इसमे से एक यही वाक्य प्रयोग मे ला सकें, तो पर्याप्त है।

यदि आप समझते हो कि आपको और शक्ति की आवश्यकता है, तो द्वितीय वाक्य को पढ़िए—

---

१. दृश्यमान=दिखाई देने वाला।

'वह सत्य मै ही हूँ ।'

अरे ! मेरा पड़ोसी मुझसे भिन्न नहीं है, उसमें भी मै विद्यमान हूँ । वह तत्त्व मै स्वयं हूँ—ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

जिस समय आप ॐ का उच्चारण कर रहे हो, अथवा गान कर रहे हो, या जप कर रहे हो, तब अपने हाथ वन्द रखिए । फिर इस विचार का अनुभव कीजिए, मनन कीजिए । चित्त को एकाग्र करते हुए यह आवश्यक नही कि आप अपने को किसी खास आसन मे आसीन रखे । ऐसा कोई बन्धन नही है । अनुभव करते हुए—मनन करते हुए, विचार को अन्त.करण मे खचित करते हुए, श्वास के साथ अन्दर खीचने का प्रयत्न करते हुए देह की चिन्ता मत कीजिए । इसकी चिन्ता मत कीजिए कि लोग क्या कहेगे । यदि गाने की इच्छा हो, तो ॐ शब्द को गाते-गुनगुनाते रहिए । यदि लेटे रहने की इच्छा हो, तो जमीन पर लेटे रहिए ।

इस विचार को अनुभव में लाइए कि 'वह सत्य मै स्वय हूँ ।' यदि आपके हाथ इधर-उधर चलते है, तो उन्हे चलने दीजिए । देह के बारे मे कोई बन्धन नही है । केवल मन को, एक जगह बाँधकर—एकाग्र करके अनुभव तथा चिन्तन कीजिए—सर्वशक्तिमान के भाव का चिन्तन-मनन कीजिए । वास्तविक आत्मा सर्वशक्तिमान है । इस विश्व मे जो कुछ हो रहा है, आत्मा के द्वारा हो रहा है । **जिस प्रकार इस धरती पर प्रत्येक बात सूर्य द्वारा हो रही है, सरिता सूर्य के कारण प्रवाहित हो रही है, मनुष्य सूर्य के कारण जागते हैं, गुलाब सूर्य के कारण खिलते हैं; इसी प्रकार आत्मा के कारण ही, सर्वशक्ति रूप परमात्मा के कारण ही संसार का समस्त कार्य-व्यवहार चल रहा है । कहिए—**

'सर्व शक्तिमान् ॐ ! ॐ !! ॐ!!!'

इस प्रकार आपके वे सब संशय, जो आपको निर्बल बनाते और परास्त करते हैं, वे सभी भ्रम जो आपको कायर बनाते है—वे दूर हट जाएँगे। वे आपके सम्मुख आने का साहस नही करेंगे।

जैसा चाहो वैसे बनो

अनुभव कीजिए कि आप सर्वशक्तिमान है—सर्वशक्तिमान आप ही हैं। जैसा विचार आप करते है, वैसे ही आप हो जाते है। यदि आप अपने को पापी कहेंगे, तो पापी हो जाएँगे। मूर्ख कहेंगे तो मूर्ख बन जाएँगे। निर्बल कहेंगे, तो निर्बल बन जाएँगे और यदि आप अपने को शक्तिमान कहेंगे, तो सर्वशक्तिमान बन जाएँगे। तब विश्व की कोई भी शक्ति आपको नीचे नहीं गिरा सकती। अनुभव कीजिए कि आप ही सब शक्तियों के भण्डार हैं—आप सर्वशक्तिमान है।

इसके बाद 'सर्वज्ञ[1]' का भाव आता है। यह सर्वज्ञता का भाव आप अपने अन्तःकरण में ग्रहण करें। मन को इस भाव का चिन्तन-मनन करने मे लगाइए। मन को ॐ का गान करने दीजिए। विचारिए कि ॐ नाम सर्वज्ञ का समानार्थक[2] है। ॐ का उच्चारण कीजिए। वह शब्द या सूत्र जिसका उच्चारण, स्मरण या जाप सर्वोपरि[3] है, ॐ है।

इस तरह जपिए। उन बुरे विचारों को जो आपको मोह-पाश में बाँध कर मूढ़ या मूर्ख बनाए हुए है, उन्हें परे कर दीजिए। परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति का सबसे सीधा मार्ग यही है।

इसी प्रकार 'सर्व व्यापक' भाव का अनुभव तथा मनन कीजिए।

---

१. सर्वज्ञ=सब कुछ जानने वाला।
२. समानार्थक=पर्याय, समान अर्थ बताने वाला शब्द।
३. सर्वोपरि=सबसे ऊपर।

मै व्यष्टि[1], परिच्छिन्न[2], तुच्छ, क्षुद्र, अह, या देह नही हूँ। मै परिच्छिन्न (विच्छिन्न=भिन्न) आत्मा नही हूँ। जो प्रत्येक अणु-परमाणु में बिघा—पिरोया—ओतप्रोत—व्याप्त है, वह मै हूँ।

इस विषय मे जरा भी संशय मन में न आने दीजिए। सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ सर्व व्यापक परमात्मा—'वह मै हूँ', वही प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है, वही मेरी समस्त देह मे है।

ॐ। ॐ।। ॐ।!!

इसके आगे पाढिए—

'मै पूर्ण स्वास्थ्य रूप हूँ।'

यदि यह देह जिसे आप 'मेरी' कहते है, रुग्ण है, तो इसे मन से पृथक् कर दीजिए। इसका विचार त्याग दीजिए। इसकी चिन्ता का परित्याग कर दीजिए। आप इसी भाव को मन मे लाइए—'मै पूर्ण स्वास्थ्य रूप हूँ। पूर्ण स्वास्थ्य मेरा है।'

इस प्रकार की पूर्ण अनुभूति होते ही आपकी देह सर्वथा नीरोग हो जाएगी। यह एक रहस्य की बात है। अभ्यास तथा प्रयत्न करने के उपरान्त आप स्वयं देख सकते है कि यह बात सही है या नही। आपकी चिन्ता के बिना ही देह स्वस्थ हो जाएगी। आपको इस शरीर की चिन्ता नही करनी चाहिए। ईश्वर से यह मत माँगिए—'हे ईश्वर! मुझे ठीक कर दे।' आप कहिए—

'मै पूर्ण स्वास्थ्य रूप हूँ।'

सस्कृत की धार्मिक पुस्तको मे एक वाक्य आया है—

नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्य.।

—दुर्बल मनुष्य इस आत्म तत्त्व को नही प्राप्त कर सकते। क्या

---

१. व्यष्टि=व्यक्ति।

२. परिच्छिन्न=औरो से कटा, अलग-थलग।

आप नही देखते कि यदि आप किसी देश के राष्ट्रपति या सम्राट् के पास जाते हैं, तो यदि आप भिखारी बनकर जाते हैं, तो दूर से ही आपको घुड़क दिया जाता है, तथा उसके पास भी नहीं फटकने दिया जाता। इसी तरह यदि आप फकीर बनकर ईश्वर के पास जाएँगे, तो आप को धक्का देकर बाहर निकाल दिया जायगा। अतः अभिन्न[1] होकर ईश्वर से मिलिए। कहिए और विचार कीजिए—'मैं पूर्णतया स्वस्थ हूँ।' ईश्वर से कोई वस्तु मत माँगिए। कहिए 'मैं स्वस्थ हूँ'—आप सचमुच स्वस्थ हो जाएँगे।

इसके उपरान्त विचार है—'सम्पूर्ण शक्ति मैं हूँ।' इस भाव को अन्त करण में लाकर कहिए ॐ! ॐ!! ॐ!!! इसका अर्थ है=सर्व-शक्तिमान् मैं हूँ।

इसके बाद विचार आता है—'सारा संसार मेरा संकल्पमात्र है।' इसको अंगीकार[2] कीजिए, इस पर विचार कीजिए, इसका मनन कीजिए। इस पर विचार करते हुए उन प्रमाणों को ध्यान में लाइए जिन्हे वेदान्त ने प्रस्तुत किया है। इस तथ्य की सिद्धि मे आपको जो कुछ विदित है उसका मनन कीजिए। यदि आपने पहले कभी यह बात सुनी या पढी नही—'सारा ससार मेरा सकल्प मात्र है।' तो भी इस पर आप विश्वास कीजिए। तब निरन्तर चिन्तन-मनन कीजिए—अभ्यास कीजिए। अकस्मात् आपको यह भान[3] होने लगेगा कि सारी दुनिया आपकी कल्पना मात्र है। ससार मेरी कल्पनामात्र है—ॐ!

अपने निर्मल रूप का ध्यान

इस प्रकार विचार कीजिए—मै सम्पूर्ण आनन्द हूँ। मैं सर्वज्ञ हूँ।

---

१. अभिन्न=एक, अद्वैत।
२. अंगीकार=स्वीकार।
३. भान=प्रतीति, मालूम।

मै सम्पूर्ण सत्य हूँ। मै सम्पूर्ण प्रकाश हूँ। मै निर्भय हूँ। मै राग-द्वेष से रहित हूँ। मै सब इच्छाओं की पूर्ति हूँ। मै परमेश्वर हूँ। मै सब कानो से सुनता हूँ। मै सब नयनो से देखता हूँ। मै सब चित्तो से चिन्तन करता हूँ। जो मेरा सत्य स्वरूप है साधु-महात्मा उसी को जानने की कामना किया करते है। नक्षत्रो तथा सूर्य से जो प्राण तथा प्रकाश प्रसारित होता[1] है वह मै हूँ।

एक कथा

हिन्दू-कथाओ मे एक बडी मनोहर कथा आई है। किसी समय एक बडे विद्वान् महात्मा थे। वे कुछ मनुष्यो को पवित्र कथाएँ सुनाया करते थे। एक बार गाँव की ग्वालिने महात्माजी के पास होकर गुजरी। उस समय महात्माजी लोगो को कथा सुना रहे थे। ग्वालिनो ने उस विद्वान् महात्मा के मुँह से ये वचन श्रवण किये—

"परम पवित्र परमात्मा का नाम एक बडा जहाज है, जो हमें संसार-सागर से पार कर देता है। इस प्रकार मानो कि समुद्र एक छोटा-सा तालाब हो, बिल्कुल कुछ भी नही हो।"

ग्वालिनो ने उस कथन का केवल शब्दार्थ (वाच्यार्थ) ही लिया। उनका उस कथन पर विश्वास जम गया। उन्हे दूध बेचने के लिए प्रतिदिन नदी के उस पार जाना पडता था। ग्वालिनो ने चित्त में सोचा—"वह पवित्र वचन है, महात्मा का वचन असत्य नही हो सकता।" उन्होने सोचा—"अब हम प्रतिदिन एक आना केवट को उतराई क्यों दे? परमात्मा का पवित्र नाम जपते हुए—ॐ, ॐ, करते हुए हम क्यो न सरिता के उस पार चली जाएँ।" उनका विश्वास वज्र की न्याई कठोर तथा सुदृढ था।

---

१. प्रसारित होता=फैलता।

दूसरे दिन वे नदी-तट पर आईं। केवट को कुछ न दिया और ॐ का जाप आरम्भ कर दिया। इसके बाद उन्होंने नदी पार करना आरम्भ किया। वे नदी के पार तैर गईं और उन्होंने केवट को कुछ भी न दिया। वे डूबी नहीं। इस तरह ही हर रोज वे नदी पार करने लगीं। वे केवट को कुछ भी नहीं देती थीं।

कोई एक मास बाद उस महात्मा के प्रति, जिसने अमूल्य वचन सुनाए थे, और ग्वालिनों का पैसा बचाया था, कृतज्ञता की भावना उन ग्वालिनों के चित्त में जागी। उन्होंने महात्मा को अपने घर पर भोजन के लिए निमन्त्रित किया।

महात्मा ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। निश्चित तारीख को नियमित समय पर एक ग्वालिन महात्माजी को लिवाने आई। वह महात्माजी को अपने गाँव ले जा रही थी। जब वे नदी पर पहुँचे, तो ग्वालिन तो एक क्षण में दूसरे किनारे पर जा पहुँची, किन्तु महात्मा जी परली पार ही रह गये। वे ग्वालिन के साथ नदी के पार न जा सके। कुछ समय के उपरान्त ग्वालिन पुनः वापिस आई। उसने महात्माजी से देरी करने का कारण पूछा। महात्मा ने उत्तर दिया —"मैं केवट की प्रतीक्षा कर रहा था। केवट आता तो मुझे दूसरे किनारे ले जाता।" ग्वालिन ने कहा—'महात्मन्' हम आपकी अत्यन्त कृतज्ञ हैं। आपकी दया से हमारे पैसे बच गए। बल्कि सिर्फ पैसे बचे ही नहीं, अब तो हमें जीवन-भर केवट को एक पैसा भी देने की आवश्यकता न रहेगी। आप भी अपना पैसा क्यों नहीं बचाते? हमारे साथ उस पार क्यों नहीं जाते? आपकी शिक्षा तथा उपदेश के कारण ही, बिना किसी प्रकार का नुकसान उठाये हम इस पार से उस पार चली जाती हैं, आप भी परले किनारे पर जा सकते हैं।"

महात्मा ने पूछा—"ऐसी कौन-सी शिक्षा थी, जिसने तुम लोगों के पैसे की बचत की?"

ग्वालिन ने कहा—"स्मरण कीजिए, आपने कहा था—ईश्वर का नाम जलयान है, जो ससार-सागर से पार करता है।"

महात्मा ने कहा—"ठीक है, सर्वथा ठीक है। मै भी उस पर आचरण करूँगा।"

अब महात्मा के और साथी भी थे। एक बहुत लम्बा रस्सा पडा हुआ था। उस महात्मा ने वह रस्सा अपनी कमर से बाँधा तथा उस रस्से के शेष भाग के बारे मे साथियो से कहा कि वे उसे अपने पास रखे, मै ईश्वर का नाम लेकर नदी मे कूद रहा हूँ। केवल विश्वास आधार पर नदी पार जाने की हिम्मत कर रहा हूँ। परन्तु ध्यान रखना, यदि कही मै डूबने लगूँ, तो रस्सा खीच कर मुझे बचा लेना।"

इसके बाद वह महात्मा नदी मे कूद पड़ा। परन्तु कुछ ही कदम आगे बढने पर वह लगा डूबने। तब उसके साथियो ने रस्सा खीचकर उसे बाहर निकला।

जिस प्रकार की श्रद्धा उस महात्मा मे थी, वह तो बाह्य श्रद्धा है। वह विश्वास ऊपरी है। वह रक्षा का बीजमन्त्र कभी नही बन सकता।

यदि आपके चित्त मे तो कुटिलता है तथा आप ॐ का उच्चारण आरम्भ करते है या परमात्मा का नाम लेकर कहते है—"मै पूर्ण स्वास्थ्य रूप हूँ, मैं पूर्ण स्वास्थ्य रूप हूँ" परन्तु मन में डरते-काँपते रहते है, मन मे तो अगर-मगर और किन्तु-परन्तु की शका होती रहती है—'यदि मै डूबने लगूँ तो मुझे बचा लेना' जैसी तुच्छ सकीर्णता विद्यमान है, तो आपके मन मे कोई दृढ विश्वास, कोई पक्का निश्चय, कोई सच्ची श्रद्धा नही है।

यह एक सच्चाई है कि विश्व के समस्त भेदभाव सारी परिस्थि-

तियाँ, सम्पूर्ण वातावरण मेरी ही कृति है—इसके सिवा अन्य कोई बात नही है।

तुम परमात्मा हो, ईश्वरो के ईश्वर हो। ऐसा ही मानो, विश्वास करो, निश्चय और सकल्प करो। इसी पल ऐसा अनुभव करो। अपने विश्वास को अटल बनाओ। इस व्यावहारिक तत्व ज्ञान को प्राप्त करो। तब आपके किन्तु-परन्तु और यद्यपि-तथापि सब दूर हो जाएँगे।

यदि आपका अपने परमात्म-भाव से लगातार सम्पर्क रहा तो क्षुद्र 'यद्यपि' का स्वय लोप हो जाएगा।

सभी सन्देह अज्ञान के कारण हैं। अज्ञान दूर होते ही पल भर में सारे सन्देह उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।

यदि आप सत्य को उसके पूर्ण रूप में, पूर्ण प्रभावशाली एवं सुन्दर रूप में ग्रहण करना चाहते हैं, तो वेदान्त आपके लिए विद्यमान है। भले ही आप इसे कुछ भी नाम क्यों न दें, परन्तु पूर्ण सत्य ज्ञान यही है।

हिन्दू धर्म ग्रन्थो मे महर्षि इसे अत्यन्त स्पष्ट शब्दो तथा निर्मल भाषा मे प्रस्तुत कर गये है। यह सर्वोत्तम सत्य है—"तुम्ही परमात्मा हो, ईश्वरो के ईश्वर तुम्ही हो, 'वही तुम हो'।" इसे समझिए, चिन्तन कीजिए, मनन कीजिए। तब आपको किसी से भी हानि नही पहुँच सकेगी।

आप ईश्वरों के ईश्वर है। यह सत्य है, इसे पूर्ण श्रद्धा से दोहराइए—"संसार मेरा सकल्प है, मै ईश्वरों का ईश्वर हूँ।"

यदि आपको इस प्रकार की बातें सुनने का अभ्यास नही तो कुछ डर नही। यदि आपके पूर्वजो की इनमे श्रद्धा नही थी तो क्या हुआ? आपके पूर्वजो ने अपनी पूरी शक्ति से काम किया। आपको

अपनी पूरी शक्ति से काम लेना है। आपकी मुक्ति तथा आपके पूर्वजो का उद्धार आपके कर्मो पर आश्रित है।

वेदान्त को पराया मत मानिए, यह आपके लिए अत्यन्त स्वाभाविक है, क्या आपकी अपनी आत्मा आपके लिए पराई है। वेदान्त का केवल इतना ही कहना है—

आत्मा को जानिए। अपने को पहचानिए।

अपने सत्य स्वरूप का साक्षात्कार कीजिए। तब आपकी सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक चिन्ताएँ सर्वथा दूर हो जायेगी।

संयमी ग्रहस्थ—ब्रह्मचारी के समान

सन्तति-निरोध का महत्व

हैनरी ड्रमड ने घोर प्रयत्न किया कि इन प्रक्रियाओ के विशिष्ट[1] स्वरूप को सिद्ध कर सके, परन्तु अपने भारी प्रदर्शन के वावजूद वह डारविन या हक्सले से एक इच भी दूर नही जा सका। न ही वह उन तथ्यो से इनकार कर सकता है, जिनसे कोई भी व्यक्ति, जो होश में हो, कभी इनकार नही कर सकता है कि यदि माली निरन्तर निरायी करता हुआ अवांछित[2] पौधों और झाड़ियों की काट-छांट न करता और उगाये पौधों की होने वाली निरन्तर वेतहाशा वृद्धि पर रोक न लगा दे तो शीघ्र ही उद्यान में अनियन्त्रित (जंगली) वृद्धि-प्रक्रिया पुनः स्थापित हो जाएगी, जिससे उद्यान की दुर्दशा हो जाएगी और पुरानी, निर्दयतापूर्ण 'जीवित रहने के लिए संघर्ष की स्थिति' हो जाएगी। जिससे शान्ति तथा सम्पन्नता का नियम नष्ट हो जाएगा।

जनसंख्या बढ़ने से संघर्ष

ठीक इसी प्रकार, किसी जाति में, यदि आवादी सम्भव विस्तार की सीमा तक जा पहुँचती है और अधिक बढ़ी आवादी की छटनी करने का कोई उपाय नहीं किया जाता, तो घोर संघर्ष अवश्य उत्पन्न हो जाएगा, जिससे शान्ति नष्ट हो जाएगी तथा नैतिक प्रक्रिया का ह्रास[3] होता चला जाएगा। इससे चरित्र-सम्बन्धी उपदेश व्यर्थ हो जाएँगे और

---

१ विशिष्ट=खास।
२. अवांछित=अनचाहे।
३. ह्रास=कमी होना।

ईश्वरीय आदेश निष्फल हो जाएँगे। इस प्रकार के अवसरों पर अनिवार्य रूप से भ्रष्टाचार पनपता है तथा राष्ट्र का पतन आरम्भ हो जाता है। रोम, यूनान अथवा अन्य किसी भी राष्ट्र के ह्रास तथा पतन की तह मे, यही जनसख्या का प्रश्न निहित दिखाई देता है। भारत इस सकटपूर्ण जनसख्या-वृद्धि के बिन्दु तक काफी समय पहले ही पहुँच चुका है कि इस बुराई की जड को उखाडने के लिए हमने कुछ भी नही किया।

इस धरातल पर कोई भी देश न तो इतना निर्धन है तथा न इतनी अधिक जनसंख्या वाला है, जितना भारत है। एक औसत भारतीय परिवार सम्पूर्ण राष्ट्र की स्थिति का परिचायक (नमूना) है। आय के अत्यन्त क्षीण साधन और न केवल प्रतिवर्ष द्विगुणित होते मुँह जिनके भोजन की समस्या आ खड़ी होती है; बल्कि अर्थहीन क्रूर रीति-रिवाज जिन पर अनुचित रूप से भारी व्यय किया जाता है, कायम हैं।

यदि एक अस्तवल मे घोडो के लिए चारा-दाना हो, जो कि एक या दो के लिए काफी हो और उसमे घोडे बहुत अधिक सख्या मे रख दिये जाएँ तो वे भी आपस में लडते-लडते मर जाएेगे। अशान्ति का कारण दूर न करना और शान्ति के लिए उपदेश देना, उपदेश की भी हँसी उड़ाना ही है। हमारे देशवासी हृदय से दब्बू (नम्र) तथा शान्तिमय है। इसमे सन्देह नही है कि उनका हृदय चाहता है कि शान्ति कायम रहे, परन्तु वे ईर्ष्या तथा स्वार्थ भावना से छुटकारा कैसे पा सकते है जबकि मास की (शारीरिक) दुर्बलता उनके ऊपर स्थिति की आवश्यकता के कारण ठोसी जाती है।

जनसंख्या और राष्ट्रीय एकता

यदि जनसंख्या की समस्या सुलझाये बिना छोड़ दी जाती है तो राष्ट्रीय एकता की सारी बाते और आपसी मेलजोल के सभी नारे

कल्पना के महल ही सिद्ध होंगे; हमें इस अत्यन्त कठिन पहेली को अवश्य सुलझाना होगा; अन्यथा हम मर जाएंगे। सहानुभूति तथा स्वार्थहीनता, शरीर विज्ञान के सिद्धांतो के अनुसार, इस प्रकार के सामाजिक वातावरण मे नही पनप सकती, जहाँ हमारे साथियों द्वारा प्रतिदिन पीड़ा तथा कष्ट का प्रदर्शन किया जाता है। इस प्रकार की बहुजनसंख्या वाली दरिद्रता जो कि चारो ओर छायी हुई है, उसके रहते ऐसी आकाक्षा करना आशा के विपरीत होगा कि भारतवासियो मे सहानुभूति तथा प्रेम की भावनाओ का विकास हो सकेगा। भौतिकी के विद्यार्थी जानते हैं कि पदार्थ एक पिड, चाहे वह किसी प्रकार का हो अपने आन्तरिक सन्तुलन को तभी तक बनाये रह सकता है, जब तक कि उसके निर्माता अंश अपने सहवासियो से बराबर दूरी की स्थिति पर रहें, ताकि प्रत्येक मोलीक्यूल अपनी रिदमिक चेष्टा को जारी रख सके और अपने इर्दगिर्द रहने वाले मोलीक्यूल्स की चेष्टाओं मे बाधा न डालने वाली दूरी पर रह सके। अब भारत की भारी जनसंख्या पर आइए। क्या इसकी व्यक्तिगत इकाइयाँ अपनी रिदमिक चेष्टाओ को बिना दूसरों के सघर्ष में आए, जारी रख सकती हैं? क्या उनके पास स्वतन्त्र स्वाभाविक चेष्टाओ के लिए पर्याप्त रिक्त स्थान (Space) विद्यमान है? यहाँ तो यदि एक खाता है, तो अवश्य दस को ही उसके पीछे भूखा रहना पड़ता है। अतएव आपको राष्ट्रीय सन्तुलन को सुरक्षित रखने के लिए तुरन्त ही उचित उपाय करने होंगे। नहीं तो, भारत के लिए एकमात्र आशा अनियन्त्रित प्राकृतिक जंगल बन जाने में ही है जिसे महर्षि वशिष्ठ ने इस प्रकार की चरम सीमा के मामलों में, जैसा कि हमारा है, अनिवार्य बताया है, कहा है कि महामारी, अकाल, ध्वंसक युद्ध तथा भूकम्प के रूप मे होगा। इस बुराई की चरम सीमा तक हम पहुँच चुके हैं। अब इसका इलाज क्या है? यह कई प्रकार का है—

विदेश-गमन का महत्व

१. हमारे देश से यह भावना तुरन्त नष्ट होनी चाहिए कि यदि हम भारत से बाहर गये तो स्वर्ग के अधिकारी नही रहेंगे। वहुत-से लोगो को अवश्य ही चिरकाल के लिए इस देश से अन्यत्र चले जाना चाहिए, और इतने अधिक भारतीयो को यहाँ से अवश्य चले जाना चाहिए जो यहाँ नही रह सकते। उन्हे देश छोडकर विदेशो मे जा कर वस जाना चाहिए। अपने को कुएँ का मेढक वनाने मे क्या लाभ या आनन्द है ? क्या आप इस वात को कभी नही देखेंगे कि आप इस सुन्दर भारत को अपने लिए दमघोटू कालकोठरी वना रहे है ?

संयम का महत्त्व

२. जव आर्य लोग भारत मे वसे, उस समय अधिक सन्तान होना वरदान समझा जाता था। परन्तु वे समय अव वीत गये। अव तो वल्कि विपरीत स्थिति हो गई है। और अधिक भीडभाड वाली जनसख्या को देखते हुए, वडा परिवार होना एक शाप वन गया है।
विचारहीन व्यक्ति जो अव भी इस वचकाना विचार से चिपटा हुआ है कि मृत्यु के वाद स्वर्ग में उसका स्थान तभी सुरक्षित रह सकता है यदि उसके काफी वच्चे हो—उस व्यक्ति को अवअपनी आँखें खोलनी चाहिए और देखना चाहिए कि यहाँ तक कि मृत्यु से पूर्व ही वह अपने घर को नरक वना रहा है; क्योंकि आधुनिक भारत में वह अधिक सन्तान उत्पन्न कर रहा है। अर्जुन के मन मे ठीक यही विचार था कि पुत्र स्वर्ग का कारण होते है, जवकि श्रीकृष्ण ने श्रीमद्-भगवद्गीता मे इन्द्रियो के भोगो से युक्त स्वर्ग की कामना की निन्दा की थी—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।।
कामात्मानः स्वर्गपराः जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।।
भोगैश्वरप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।
त्रैगुण्यविषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्योभावार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।

—गीता, अध्याय २, श्लोक ४२ से ४५ तक

—"हे अर्जुन ! जो सकामी[१] पुरुष केवल फल मे प्रीति रखने वाले स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ[२] मानने वाले, इससे बढकर और कुछ नही है, ऐसा कहने वाले है, वे अविवेकी[३] जन जन्मरूप कर्म-फल को देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत-सी क्रियाओ के विस्तार वाली, इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहते है। उस वाणी द्वारा हरण किये गये चित्त वाले तथा भोग और ऐश्वर्य मे आसक्ति वाले उन पुरुषों के अन्तःकरण मे निश्चयात्मक बुद्धि नही होती है। और हे अर्जुन ! सब वेद तीनों गुणों (सत्य रज, तम) के कार्य रूप ससार को विजय करने वाले अर्थात् प्रकाश करने वाले हैं, इसलिए तू असंसारी अर्थात् निष्काम[४] तथा सुखदुःख आदि द्वन्द्वो से रहित होकर नित्य वस्तु मे स्थित, तथा योग-क्षेम को न चाहने वाला तथा आत्म-परायण" बन जा।"

१. सकामी=इच्छा लेकर कार्य करने वाले।
२. परम श्रेष्ठ=सबसे उत्तम।
३. अविवेकी=जिन्हे भले-बुरे तथा कर्तव्य-अकर्तव्य की पहचान न हो।
४. निष्काम=कामनाओं से रहित।
५. आत्म-परायण=आत्मा मे लीन, अपने मे सन्तुष्ट।

इन श्लोकों की भावना को हृदय मे धारण करना, स्वतन्त्रता की भावना को हृदय में धारण करना और विजय प्राप्त करना है। **हमें अपने देश से इस सबसे बड़े बरबाद करने वाले सिद्धान्त को सर्वथा दूर कर देना चाहिए जो अब तक हमें अपने प्रवाह में बहाता रहा है— 'विवाह करो, अज्ञान से सन्तान की खूब वृद्धि करो, जिन्दा रहो और बन्धन में मर जाओ।'** अब हम अपने पिछडेपन के लिए मुसलमान शासको को दोष देते है, फिर हम ब्रिटिश सरकार पर दोष लगाते है, इसके बाद हम भारतीय धर्मो को इसके लिए उत्तरदायी बताते है, इसके उपरान्त हम शिक्षा-प्रणाली पर दोषारोपण करते है। इस प्रकार की आलोचना मे, शायद हम कुछ हद तक ठीक भी हो सकते है, परन्तु वास्तविक दोष हमारी अपनी अपवित्रता का है, जो विश्व के सबसे पवित्र सम्बन्ध को भी दोषपूर्ण बना देती है, उस सम्बन्ध को जो हम सब भारतीयो को पैदा करता है और हमे वही बताता है जो कुछ हम है—अर्थात् विवाह सम्बन्ध । इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा सभी सस्थाओ से पवित्र सस्था की ओर हम अत्यन्त असावधानता से अत्यन्त अवैज्ञानिकता से तथा अत्यन्त लज्जाजनक ढग से ध्यान देते है। आपकी तमाम जन्मपत्रियो, ज्योतिषियो की गणनाओ, लग्न-मुहूर्त को पूर्ण करने के बावजूद—भारत मे विवाह असमय होते है, अशुभ और अपवित्र होते है। कोई भी ग्रह-नक्षत्र अपने पवित्र गृहों मे निवास नही कर सकते, जब वे देखते है कि उनके प्रभाव के नाम पर, जोड़े विवाह करने जा रहे है। वे ग्रह-नक्षत्र अपनी-अपनी स्थितियो में विचलित होते और काँप उठते है, क्योकि ये विवाह पशुओ से भी हीन होते है। एक जोड़े के विवाह को, जो कि अपना निर्वाह करने की भी क्षमता नही रखता, उन्हे पवित्र बनाने की अपेक्षा विवाह के समय उच्चारण किये गए मन्त्र अपने गुणो को खो देते है और वे अपनी शक्ति खोकर व्यर्थ हो जाते हैं। **फूल अपने सौन्दर्य को कैसे**

धारण कर सकते हैं जबकि उनका उपयोग उस अपवित्र संस्कार में किया जा रहा हो जो दो दिवालिया व्यक्तियों को जोड़ने के लिए की गई हो ताकि वे अयोग्य, असमर्थ, मूल्यहीन, बेकार सन्तान को पैदा करके देश की जनसंख्या की भीड़ को और अधिक बढा सकें।

नवयुवको! बन्द करो, इसे बन्द करो! अरे नौजवानो! आप ही भारत की भविष्य की आशा हो। आप ही इसे बन्द करो। सदाचार के नाम पर, भारत के नाम पर, अपने लिए तथा अपने उत्तराधिकारियो के लिए मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि देश में अविवेकपूर्ण असमय, अन्धाधुन्ध विवाहो को बन्द करो। ऐसा करोगे तो इसमें जनता पवित्र हो जाएगी और कुछ हद तक इससे जनसंख्या की समस्या हल होगी।

मान लीजिए कि ये सुझाव अस्वाभाविक है—कुदरत के खिलाफ हैं, परन्तु यदि ऐसा सोचकर आप अन्धाधुन्ध विवाहो को और अविवेकपूर्ण सन्तानोत्पत्ति को जारी रखेंगे तो आपको अकाल और मृत्यु का शिकार होने के रूप में दण्ड मिलेगा। यह कोई अत्युक्ति[1] नही है यह एक कठोरतम सत्य तथा क्रूर वास्तविकता है। क्या (गाँवो में) बाल विवाह करना तथा विधवा का विवाह न करना संसार में अस्वाभाविक नही है? सूर्य के नीचे, किसी भी सभ्य जाति से पूछकर देखिए, क्या आपमे मानवता का लेशमात्र भी बाकी बचा है? तब आप विश्राम कैसे कर सकते हैं, जब तक कि आप अमानवीय, प्रकृति-विरुद्ध कुरीतियों को दूर न करें? विधवा के बच्चे के कोमल हाथ अनजाने ही सहायता पाने के लिए आगे बढे हुए हैं। जीवित सतियाँ इंच-इंच करके आपकी कुरीतियो की चिताओं में जल रही हैं। विधवा अपनी मासूम आँखों मे आँसू बहाती आपकी ओर देख रही हैं और आपमें

---

१. अत्युक्ति=बढ़ा-चढ़ाकर कही गई बात।

सहायता की याचना कर रही है कि आप उन्हे अपने बुरे रीति-रिवाजो से बचाएँ ।

कब तक आप रुदन करती भवानी (भारतीय नारी) से पीठ मोड़े रहेंगे ? कब तक उसके करुण रुदन की तरफ आप कान बन्द किये रहेगे ? क्या आप चाहते है कि वह चंडी का रूप धारण करे, रक्त की प्यास लेकर बदले के लिए तैयार हो जाए ? यदि उसने क्रुद्ध दृष्टि डाली, तो पृथ्वी काँप उठेगी, भूकम्प आ जाएगा । लोग कहते है शान्ति, शान्ति ! आप देश मे तब तक शान्ति की आशा कैसे कर सकते है, जब तक कि आप भवानी को प्रसन्न नही करते ? योरुप मे जितने ही निम्न वर्ग के लोग है, उतनी ही जल्दी वे विवाह करते है, परन्तु इतनी छोटी अवस्था मे कही भी विवाह नही होते, जैसे कि हिन्दुस्तानी लोगो मे होते है । **विदेशों में, ऊँचे वर्ग के लोग तीस वर्ष की अवस्था से पूर्व शादी नहीं करते । उनका विचार होता है कि बच्चे कम हों, परन्तु हों स्वस्थ और योग्य ।**

हरबर्ट स्पेंसर ने अपने 'शरीर विज्ञान के सिद्धान्त' में दिखलाया है कि ऊँचे दर्जे के मानसिक विकास मे सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति अवश्य ही कम हो जाती है । **हम कब तक इतने नीचे गिरे रहेगे और पशुओं की तरह अन्धाधुन्ध सन्तान पैदा करते रहेगे ? हमारे अपने शास्त्रों के अनुसार भी, ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा कही गई है ।** शास्त्र इसकी प्रशसा करते नही थकते । पवित्रता के बिना मनुष्य मे न तो शारीरिक शक्ति हो सकती है और न आध्यात्मिक शक्ति । **मानव शक्ति का वह अंश जो काम-सम्भोग सम्बन्धी चेष्टाओं में तथा काम-वासना सम्बन्धी विचारों में व्यय होता है, जब उसे नियन्त्रण में कर लिया जाए, वह सरलता से ओज में परिवर्तित हो जाता है । उससे अक्षय आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है ।**

आपको काम-सम्भोग सम्बन्धी इच्छा को वश में करना होगा। जो पाशविक[1] इच्छा को वश में नही कर सकता, वह मूर्ख है। वह अत्यन्त गम्भीर सम्बन्ध—काम सम्बन्धी विषय को तुच्छ तथा हीन बना देता है। वह नही जानता कि अपने रक्त को ही वह व्यर्थ बहाता है। वीर्यनाश से वह हर प्रकार की दुर्बलता को आमंत्रित करता है। सब प्रकार के पापों का मूल कारण इस दिव्य शक्ति का गलत प्रयोग ही है, मानो गलत स्थान पर प्रयोग करके व्यक्ति अपने धन को धूल में बदल रहा हो। 'पाशविक' विशेषण यह बतलाता है कि काम-वासना की इच्छा नीचे दर्जे की इच्छा है। जानवर वास्तव मे निम्न तथा मूढ़ होते हैं। उनमे सन्तानोत्पत्ति का विचार विवेकपूर्ण नही होता। अन्धाधुन्ध सन्तान उत्पन्न करने के कारण ही उनमें एक-दूसरे का खून बहाने के लिए संघर्ष होता है, इसीलिए उनके इस व्यवहार पर यह कलंक लगा है। तथापि पशु बिल्कुल अबोध होते है। केवल काम-सम्भोग के हेतु काम-वासना वे नही जानते। मानव को पशुओं की अपेक्षा ऊँचा समझा जाता है; परन्तु उसी परिमाण में, जहाँ तक कि वह तर्क द्वारा अपनी वासनाओं को वश में रख सके। परन्तु जो मनुष्य पशुओं के समान नीच हो, जो अन्धाधुन्ध सन्तान पैदा करता जाए, वह तो पशु से भी नीचे गिर जाता है; क्योंकि वह अनावश्यक, दूषित, काम-सम्भोग की इच्छा भी रखता है, जिसका सन्तान से सम्बन्ध नहीं। फिर वह कितना नीचे गिर सकता है और कितना भ्रष्ट हो जाता है, उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

पवित्रता की रक्षा आवश्यक

पवित्रता! पवित्रता! सर्गानों के जोर मे आपको पवित्रता की

---

१. पाशविक=पशु जैसा।

रक्षा करनी होगी । नही तो विकासीय सघर्ष का निर्दय चक्र आपको कुचल देगा । आज आपकी आशा का आधार एक मात्र पवित्रता ही है । जिस प्रकार विकास की प्रक्रिया ने आप पर निकट-सम्बन्धियों में विवाह न करने का आदेश ढोंसा है, इसी प्रकार आपके जीवित रहने की पहली शर्त यह है कि आपके मन पवित्र हों और उनमें काम-विकार न हो ।

हे भारत के लोगो ! यदि आपमे सयम[1] का अभाव रहा तो, आप जीवित नही रह सकते । यह कहना आपको कठोर लगता होगा; परन्तु आपको सयम (इन्द्रिय-निग्रह) अपनाना ही होगा, आपको अपने शरीर के लिए, आपको अपने मस्तिष्क के लिए, आपको अपने धर्म के लिए, इस संसार के लिए और परलोक के लिए—आपको पूर्णतया पवित्र आचरण वाला बनना होगा । पवित्रता के बिना आपकी वीरता नही टिक सकती, पवित्रता के बिना आपकी एकता नहीं हो सकती, पवित्रता के बिना आपके देश में शान्ति नही हो सकती ।

शिक्षा का महत्व

शिक्षा—अमेरिका तथा इग्लैड मे, स्कूली शिक्षा से रहित व्यक्ति भी, दूसरे विश्वविद्यालयो के अडरग्रेजुएट्स की अपेक्षा अधिक समझदार है । कारण क्या है ? उनकी सस्कृति का मुख्य स्रोत[2] सस्ता दैनिक प्रेस (समाचारपत्र) है । इंग्लैड, जापान तथा अमेरिका में समाचार पत्र प्रतिदिन इतने ज्ञान का प्रसार करते हैं कि जितना विश्वविद्यालयो द्वारा भी नहीं किया जाता । हम अपनी सरकार तथा अन्य सस्थाओ का धन्यवाद करते है कि उन्होने कुछ सीमा तक देशी शिक्षा का प्रसार किया है, परन्तु व्यवहारत. यह 'नही' के बराबर है । हम

---

१. सयम=इन्द्रियो को वश मे रखना ।

२. स्रोत=निकास ।

अपने जनसाधारण की निरक्षरता तथा स्त्रियों की अशिक्षा के लिए किसी अन्य को दोष नहीं दे सकते—इसका सारा दोष हम पर आता है। स्त्रियों की स्थिति भयकर रूप से अन्धकारपूर्ण तथा अज्ञान मे भरी है। अधिक सन्तान पैदा करने का चक्कर छोड़कर, उसी शक्ति का प्रयोग स्त्री जाति को शिक्षित करने में करो। जनसाधारण को शिक्षित बनाने में उसे लगाओ। अपने को ऊँचा उठाओ और देश का उद्धार करो। इसका सबसे सरल तथा सीधा उपाय यह है कि भारतीय समाचार पत्रों की दशा सुधारो। वास्तव में लाभदायक और उपयोगी पत्र निकालो। जो समाचार पत्र इस समय विद्यमान है, उनमें सुधार करो। देशी भाषाओं में समाचार पत्र निकालो जिससे स्त्रियो तथा करोड़ों साधारणजनों का लाभ हो। इस दिशा मे अब तक कुछ प्रयत्न किये भी गये है परन्तु वे कम है। कारण यही है कि उच्च शिक्षित वर्ग ने नियम बना रखा है कि वे देशी भाषा के पत्रों को हाथ नहीं लगाएँगे। अपनी मात भाषा का सम्मान करना आपको अवश्य ही सीखना होगा। नवयुवक संगठनों को सरल हिन्दी भाषा में पत्र निकालने चाहिए जिनमे जहाँ तक सम्भव हो फारसी और संस्कृत के शब्द न हों। अस्वाभाविक भाषा-शैली को छोड़ देना चाहिए। स्वाभाविक रूप में जैसा आप सोचते हैं वैसा लिखिए। किसी की नकल मत कीजिए। कालेज के विद्यार्थी भी छोटे-छोटे लेख लिख सकते हैं। अपनी मातृभाषा में अपने विचार प्रकट करने का यदि वे अभी से प्रयत्न करेंगे, तो आगे चलकर वे उन भावों को प्रकट कर सकेंगे जो बहुत विचारोत्तेजक[1] ज्ञानवर्द्धक[2] और प्रेरणादायक[3] होंगे।

---

१. विचारोत्तेजक=विचारो में उत्पन्न करने वाले।
२. ज्ञानवर्द्धक=ज्ञान बढ़ाने वाले।
३ प्रेरणादायक=प्रेरणा देने वाले।

कालेज के छात्र-छात्राओं का कर्त्तव्य

कालेज के छात्र-छात्राओ को यह अपना पवित्र कर्त्तव्य समझना चाहिए कि वे अपनी निरक्षर बहनों को शिक्षित बनाएँ। बहनों, माताओं, पत्नियों, पुत्रियों और सम्बन्धी स्त्रियों को लिखना-पढ़ना सिखलाएँ। पब्लिक स्कूल पद्धति की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नही। यह पवित्र व्रत आपकी जिम्मेदारी है।

यदि भारत जिन्दा रहना चाहता है, तो समस्त देश मे स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रसार होना चाहिए। नवयुवको! क्यो न यह काम आप के ही हाथो से आरम्भ हो? यह देखिए कि आपके प्रदेश मे एक भी स्त्री या एक भी गरीब आदमी निरक्षर न रह जाए। देश के माथे से अशिक्षा का कलक दूर करो। क्या अपने पडोस की भगी की स्त्री को पढाने मे आपको डर लगता है या लज्जा आती है? तो आपके व्यवहार और चरित्र को धिक्कार है! **गरीबों, अनपढ़ों के पास जाओ तो मन में माँ जैसी ममता लेकर जाओ और उन्हें शिक्षित बनाने के काम से प्यार करो।** कैसा देवदूतो जैसा काम है! लिखना-पढ़ना सिखलाने के बाद उन्हे भौतिकी, मनोविज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, इतिहास, राजनीति, शरीर विज्ञान आदि के आरम्भिक पाठ पढ़ाओ। इन बातों को इतने रोचक तथा आसान ढंग से उन्हे समझाओ कि धीरे-धीरे वे उस विपय को समझने के योग्य बन जाएँ।

हिन्दी शिक्षा का महत्त्व

राम हिन्दी पढ़ने पर इसलिए जोर देता है कि हिन्दी अवश्य शीघ्र ही भारत की राष्ट्रभाषा होगी। आपके सम्मुख सबसे पहला महत्त्व-पूर्ण कार्य यही है कि गरीबो तथा स्त्रियो को शिक्षित बनाओ। यह कार्य आपको अन्त मे महान बनाएगा।

कृषि-शिक्षा का महत्त्व

परन्तु इतना न भूलना कि इससे भी आवश्यक काम आपके लिए यह है कि आप कृषि सम्बन्धी कला का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करें, उद्योगों का व्यापक और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करें, इतना अच्छा ज्ञान जितना ऊँचे उठे देशों के लोगों को प्राप्त है। विदेशो में जाकर इस ज्ञान को प्राप्त कीजिए तथा भारत मे आकर उस उपयोगी ज्ञान का व्यापक प्रसार कीजिए।

धर्म का स्थान

धर्म—पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कर्तव्यपालन आपका कर्मकाण्ड है। परन्तु कोई भी कर्म या श्रेष्ठ कार्य अज्ञान से नही किया जा सकता। केवल अज्ञान अन्धकार के कार्य (पाप-कर्म) ही अन्धकार मे किये जाते हैं। जब आपके हृदय में ज्ञान की ज्योति नहीं प्रज्ज्वलित होगी, तब तक आप किसी महत्वपूर्ण कार्य में सफल नहीं हो सकते। तब तक आप एक कदम भी आगे नही बढ सकते। आपके कानों मे दिनरात जो विस्तार से कहा जाता है, वह सब आपके शरीर से ही सम्बन्ध रखता है परन्तु आत्मा के बिना शरीर नहीं रह सकता। सभी सफल अन्दोलनो की आत्मा जीवित आस्था यानी विश्वास में होती है। आस्था और विश्वास का आधार ज्ञान की ज्योति है। यहा तक कि भौतिकवाद[1] के अग्रणी नेता भी, चाहे वे सन्देहवादी हों या रचानावादी, नास्तिक हो या किसी अन्य विचार के हों—सभी सफल होते हैं, जब उनके अन्दर आस्था हो। वे मानें या न मानें—उनकी सफलता अवचेतन मन में छिपी आस्था के कारण ही होती है। इस प्रकार वे धर्मोपदेशक से बढकर धार्मिक का जीवन व्यतीत करते है।

---

१. भौतिकवाद=दुनियावीपन (Materialism)।

यहाँ एक रबड फैक्टरी है। यह हजारों बेरोजगार लोगो को रोजगार देती है। राष्ट्रीय व्यापार को आरम्भ करती है, राष्ट्र की पूँजी को कई गुना बढाती है, गरीब मजदूर श्रेणी को बढावा देती है, जहाजी कम्पनियों के लिए बहुत भारी काम मोहय्या करती है। रेल्वे कर्मचारियो को काम देती है। डाकखाने का काम बढ़ाती है। यह फैक्टरी कैसे चल सकती थी यदि इसके सचालक में भावना या स्पिरिट न होती ? इसी प्रकार आपके कोई भी व्यक्तिगत, परिवारिक, सामाजिक या राजनैतिक कार्य तब तक नही पनप सकते, जब तक कि आप अपने अन्तःकरण से उनके लिए गौरव और महत्ता की आस्था[1] न मॉगें ? आपके अन्त करण की प्रतिक्रिया हृदय-परिवर्तन, मानसिक सशोधन तथा आध्यात्मिक सन्तुलन अर्थात् आपकी अपनी अन्तरात्मा की भावना पर ही आपकी सारी हलचल निर्भर होती है। कार्लायल ने कहा है—'विश्वास ही महान् जीवनदायी शक्ति है।' किसी देश का इतिहास उतना ही सफल, आत्म-विकास-कारक तथा महान होता है, जितना उस देश के निवासियो मे विश्वास हो।

विश्वास की आवश्यकता

जो कुछ भी महान है, वह सबसे पहले अन्त करण की गहराइयों में प्रकट होता है। जो मनुष्य दिव्य भावना में निवास नहीं करता या पूर्ण विश्वास नहीं करता, जो एक ईश्वर के लिए सघर्ष नहीं करता, वह चाहे जहाँ रहे, कितनी शान और धन समृद्धि में रहे—किन्तु वास्तव में वह जीवित नही है, वह मृत है।

हरबर्ट स्पेंसर ने भी कहा है—"हमारी विचार-चेतना का स्वरूप

---

१. आस्था=विश्वास।

अनुभूतियों से निर्मित होता है, और प्रज्ञा[1] केवल उसका वाह्य रूप है। मन की करते हुए जिस भाग की सामान्यतः हम उपेक्षा कर देते हैं, वह उसका आवश्यक भाग है; अर्थात् अनुभूतियाँ ही शासन करती हैं, बुद्धि तो उनकी दासी है।" अनुभूतियों[2] और भावनाओं को ही सरल भाषा में 'हृदय' कहा जाता है। आस्था का धर्म तुरन्त ही क्रिया करता है, और मनुष्य के कर्मों के लिए शक्ति प्रदान करता है। स्पेंसर ने आगे कहा है—"नौकर में (मस्तिष्क में) सुधार करने से अधिक लाभ नहीं हो सकता जब तक कि हम स्वामी (मन) में सुधार न करें।" जेम्स ने उस युग के योग्यतम उक्त मनोवैज्ञानिक की उक्ति को स्वीकार करते हुए कहा है—"धार्मिक अनुभूतियाँ उसी प्रकार प्रभावशाली हैं, जिस प्रकार कोई भी अन्य सीधी (direct) अनुभूति हो सकती है। बल्कि तर्क द्वारा जितना विश्वस्त परिणाम प्राप्त होता है, उससे भी अधिक परिणाम धार्मिक विश्वासों द्वारा पैदा होता है।"

भावनाओं का महत्त्व

अपनी प्रकृति की गहराई के स्तर पर जीवन व्यतीत करने के लिए, अपने जीवन के गहनतम रहस्यों को जानने के लिए, भावना का अनुभव कीजिए, अपने अन्तरतम में छिपी अपनी वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त कीजिए। प्रकृति में भी अन्तर्निहित[3] वास्तविकता वही है। तब आप 'तत्त्वमसि' के साकार जीवित रूप हो जाएँगे।

(१) यही है जीवन, यही है जीवन
यही अमरता, यही है शक्ति।

---

१. प्रज्ञा=विशेष बुद्धि।
२. अनुभूतियाँ=महसूस करना।
३. अन्तर्निहित=अन्दर छिपी।

इसकी एक ही दृष्टि से स्तम्भ गिर जाते हैं, यह शक्ति आप प्राप्त कर सकते हैं।

(२) ससार मेरे लिए मार्ग छोड़ देता है, मेरे लिए स्थान बना देता है, मैं ज्योति से उज्ज्वल होकर आ रहा हूँ, अन्धकार ! तू परे हट जा।

५. संयम तथा निःस्वार्थ भावना

सुख का रहस्य

सुख का रहस्य कुछ विचित्र है। वह रहस्य इस प्रकार है कि—जितना ही तुम पदार्थों की खोज करते हो, उतना ही तुम उन्हे खो देते हो। जितना आप इच्छा से दूर रहते हैं, उतना ही आप अपने को जरूरतों से भी दूर पाते हैं और उतना ही सांसारिक पदार्थ आपके पीछे दौड़ते हैं।

आजकल हिन्दुस्तानी भी—संसारी बुद्धि वाले हिन्दुस्तानी भी इस रहस्य से अनभिज्ञ हैं। वे तीव्र तथा गहन विचार न करने के कारण, किसी अद्भुत घटना को इसका हेतु स्वीकार करते हैं, जो कि वास्तविक हेतु है नही।

भारत का राजनीतिक पतन किस कारण से हुआ? या आर्थिक दृष्टिकोण से भारत का इतना अधःपतन क्यो हुआ? कारण यही है कि आजकल के हिन्दुस्तानी उन्ही दिनों के हिन्दुस्तानी हैं, जब हिन्दुस्तान की गिरावट आरम्भ हुई थी। इनमें व्यावहारिक वेदान्त नही है। आप यह सुनकर चकित होगे कि वही भारत जो वेदान्त तथा परोपकार-भावना का धाम था, एकता का मूल स्रोत था—'सब एक है' की दिव्य-भावना का मूल अधिष्ठान था, वही देश जहाँ दिव्य तत्त्व ज्ञान, आध्यात्मिकता, आत्मसम्मान, आत्मज्ञान तथा आत्मनिर्भरता की गंगा प्रवाहित होती थी, वही आज व्यावहारिक वेदान्त से रहित है। भारत के अधःपतन का यही हेतु है।

राष्ट्र क्यों गिरते है ?

राष्ट्र क्यो गिरते है और क्यो उन्नति करते है ? बाहरी दृश्यों की ओट मे वह कौन-सी वस्तु है, जो किसी जाति को उन्नत बनाती है ? वह कौन-सा चन्द्रमा है, जो राष्ट्रो के उत्थान-पतन रूपी ज्वार-भाटे का कारण बनता है ?

इतना ही कथन पर्याप्त होगा कि आध्यात्मिक अध पतन के बिना कोई भी राष्ट्र, किसी भी दृष्टिकोण से पतित नही हो सकता। एक हिन्दुस्तानी के मुँह से, जिसने हिन्दुस्तान और अन्य राष्ट्रो का पूर्ण अध्ययन किया है, व्यक्त हुए इन शब्दो का आप स्वागत करेगे। सम्भवत. और हिन्दुस्तानी इस उक्ति में राम के साथ सहमत न हो, परन्तु राम स्वत प्रमाण[1] पर, अपने गम्भीर निरीक्षण के आधार पर यह बात कहता है।

क्या कारण है कि अमेरिका इस समय बडी उन्नति कर रहा है, तीव्र वेग से प्रगति कर रहा है ? आर्थिक प्रगति के दृष्टिकोण से, अमेरिका इतने तीव्र वेग से क्यो आगे बढ रहा है ? इसका कारण यही है कि अमेरिकन लोग अनजाने ही, इस बाह्य जगत् मे वेदान्तिक जीवन-यापन कर रहे है। अमेरिकन लोग किस प्रकार अमली वेदान्त का जीवन व्यतीत कर रहे है ? तथा वेदान्त उनकी दुनियावी तरक्की का कारण किस तरह है ?—इस विषय मे कुछ अधिक कथन करने की आवश्यकता नही है। परन्तु है यह यथार्थ बात। सत्य, हाँ सत्य, केवल सत्य ही प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। असलियत, असली चालचलन, केवल निर्मल आचरण को ही सम्मान साफल्य उपलब्ध होगा, अन्य को नही।

---

१ स्वत प्रमाण=अपने ही सबूत के आधार पर।

सभी विवरणों को छोड़कर, सत्य किन्तु वाह्यदृष्टि से विपरीत प्रतीत होने वाली उक्ति पर तर्क-वितर्क त्यागकर, जो आश्चर्यजनक बातें अभी राम ने कही हैं, उन पर विचार कीजिए।

इंजील में लिखा है "Ask and ye shall find it, knock and it shall be opened unto you"

—माँगो और तुम उसे प्राप्त करोगे; खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिए खुल जाएगा।

हिन्दू कर्मवाद का अभिप्राय

उधर हिन्दू कर्मवाद की शिक्षा देते हैं, जिसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इच्छा मानो अपनी पूर्ति अपने संग लिए रहती है। प्रत्येक कामना तथा प्रत्येक दृढ़ निश्चय किसी समय पूरा होने का वचन देता है। उद्यान में दृष्टिगोचर होने वाली प्रत्येक कलिका अपनी उम्मीद पूरी हुई देखती है, कभी न कभी वह खिलती और फलती है। जानवरों की सभी आशाएँ भी सफल होती है। इस विश्व में कोई भी उद्योग, कोई भी शक्ति तथा कोई भी वस्तु वृथा नहीं जाती। कोई भी पदार्थ नष्ट नही होता।

१. शक्ति के दृढ आग्रह (Law of persistence of force).

२. उद्यम के सरक्षण (Law of conservation of energy).

३. द्रव्य की अविनश्वरता का नियम (Law of indestructibility of matter).

—उक्त तीन नियमों को हम प्रकृति में लिप्त पाते है। इसी प्रकार मानसिक सक्रियता, मानसिक कल्पनाएँ, संकल्प तथा इच्छाएँ —ये मानसिक उद्योगज[1] शक्तियाँ है, ये सभी कैसे नष्ट हो सकती हैं? ये भी अवश्य सफल होंगी, चाहे देर से या जल्दी। इस प्रकार

---

१. उद्योगज=उद्योग से उत्पन्न होने वाली।

सभी कामनाओ की पूर्ति अवश्य होगी ही। कर्मवाद का सार-सग्रह इतना ही है। हिन्दू उपदेश देते है कि—"मॉगो तथा आप उसे पाओगे, खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेगा।"

परन्तु क्या ठीक ऐसा ही होता है ? प्रतिदिन के जीवन अनुभव मे क्या हमे ऐसा होता दिखाई देता है ? किन्तु लोग कर्मवाद का आम तौर पर जो मतलब लगाते है, उसके मुताबिक होने वाले अनुभव से यदि आप इसे प्रमाणित करना चाहे, या जन-साधारण इन वाक्यो से जो मतलब समझते है, उस रीति से आप इस कथन को यदि सिद्ध करना चाहे, तो यह आपकी गलती होगी। आप देखेगे कि यह सिद्धान्त व्यवहार मे सही नही उतरता। इस कथन मे पूरी सचाई नही है, केवल यह सचाई का एक भाग है। बाइबिल मे हो या हिन्दुओ के यहॉ कहा गया हो, "मॉगिए और उसे पायेगे, खटखटाइए और द्वार आपके लिए खुल जाएगा"—परन्तु इसका जो तात्पर्य समझा जाता था, उसे जनसाधारण नही समझते।

इस कथन का तात्पर्य यह था कि उसका आपको मूल्य चुकाना पडेगा। यह न भूलिए कि उसकी कीमत भी चुकानी जरूरी है। मूल्य का भी जिक्र हमे इजील मे मिलता है—"He that will keep his life will loose it"

—जो अपने जीवन की आकाक्षा करता है उसे पहले वह खोना होगा। इसका क्या अभिप्राय है ? इसका अभिप्राय यही है कि जो याचना करेगा—मॉगेगा—पाने को उत्कण्ठित होगा, वह नही पाएगा। इच्छा, लालसा, उत्कण्ठा, कामना, उत्सुकता—पाने मे बाधा है। 'जो इस प्रकार अपने जीवन को बचाकर रखेगा, वह उसे खो देगा।

"Man shall not live by bread alone."

—मनुष्य का जीवन केवल अन्न के आश्रित नही है। ईश्वर की प्रार्थना मे हम कहा करते है—"आज के दिन हमे हमारा प्रतिदिन का

भोजन प्रदान कीजिए।" फिर यह भी कहा करते हैं कि मनुष्य का जीवन केवल अन्न के आश्रित नही है। इन दोनो उक्तियों का तालमेल (समन्वय) कैसे होगा?

प्रार्थना का तात्पर्य

इन कथनों का तात्पर्य भलीभाँति समझिए। 'आज के दिन हमें हमारी नित्य की रोटी दीजिए।' प्रभु से की गई इस प्रार्थना का यह अभिप्राय नही है कि आप याचना करते रहें, अनुनय करते रहें, विनती करते रहे, इच्छा और कामना करते रहें। नही, कभी भी यह अर्थ नही है। इसका तात्पर्य यह था कि एक राजा या सम्राट् को भी, जिसे प्रतिदिन का भोजन न प्राप्त होने की तनिक भी आशंका नही है, उसे भी यह प्रार्थना करनी चाहिए। एक राजकुमार को भी, जिसे भोजन जरूर मिलेगा, उसे भी यह प्रार्थना करनी चाहिए।

यदि यह तात्पर्य है तो साफ हो जाता है कि 'हमारी नित्य की रोटी दीजिए' का तात्पर्य यह नही कि मनुष्य भिक्षुक की वृत्ति अपनाएँ या धन सम्पत्ति की आकांक्षा करें। इसका यह तात्पर्य कदापि नही। प्रार्थना का अभिप्राय इतना ही है कि प्रत्येक व्यक्ति को भले ही वह राजकुमार या सम्राट् या संन्यासी ही क्यों न हो, अपने चारों ओर समस्त पदार्थ, विशाल धन-सम्पदा, सम्पूर्ण रत्नराशि, सुन्दर-तथा रम्य वस्तुएँ अपनी नही समझनी चाहिए। उसे धन-सम्पदा पर अपना स्वामित्व या अधिकार नही समझना चाहिए। अपितु यह मानना चाहिए कि यह सब कुछ परमात्मा का ही है। मेरा नही है— 'इदं न मम'।

यह प्रार्थना याचना के लिए नही, बल्कि त्याग के लिए है। मानो 'हमारी रोटी हमे दीजिए' का तात्पर्य मांगना अथवा इच्छा करना

कदापि नही। इसका अभिप्राय है—त्याग करना—सब कुछ परमेश्वर के अर्पण करना।

आप सोच सकते है कि किसी सम्राट् का—'आज की रोटी हमे दीजिए' आदि प्रार्थना करना कितना असगत[1] होगा, यदि उक्त प्रार्थना का सामान्य अर्थ ग्रहण किया जाए।

प्रार्थना का यथार्थ अर्थ

यह प्रार्थना तभी तर्कसंगत हो सकती है, यदि सम्राट् उस भावना से प्रार्थना करे कि सभी हीरे-जवाहरात, मोती और पन्ने, महलो की सारी धन-दौलत, महलो तक का मै त्याग करता हूँ तथा अपना सर्वस्व[2] प्रभु के अर्पण करता हूँ। मै अपने अधिकार का दावा वापिस लेता हूँ, क्यो कि जो कुछ है, सब परमेश्वर का है।

यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ वह इन सभी पदार्थो से नाता तोड़कर, इनसे दूर जा खड़ा होता है। वह साधुओ के समान साधु हो जाता है। कहता है, यह सब परमेश्वर का है। मेज परमात्मा की है, उस पर रखा खाना परमात्मा का है, मेरा कुछ नही है। मुझे जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह प्रिय प्रभु से प्राप्त होता है। प्रार्थना द्वारा वह यही अनुभव करता है। 'हमारे नित्य का भोजन' आदि का यदि आप वही अर्थ ग्रहण करे, तभी 'मनुष्य का जीवन केवल अन्न पर आश्रित नही है', इस कथन से उसकी सगति हो सकती है। दोनो कथनो का समन्वय तभी किया जा सकता है।

इजील मे यह भी लिखा है—"Seek the kingdom of Heaven and all things will be added unto you"

---

१. असगत=अयुक्त।

२. सर्वस्व=सवकुछ।

—स्वर्ग के साम्राज्य की खोज करो तथा अन्य सभी वस्तुएँ तुम्हे प्राप्त हो जाएँगी।

यह है कुंजी। उक्त प्रार्थना की यह चावी है। यही प्रार्थना-वाक्य है, जिसे ईसामसीह ने ईश्वर-प्रार्थना सम्बन्धी कहा और वह वाक्य इस प्रकार है—"पहले स्वर्ग का साम्राज्य खोजो, फिर और सब वस्तुएँ आपको स्वयं मिल जाएँगी।"

इसके अतिरिक्त इंजील में यह भी कहा गया है—"In sorrow she should bring forth child."

दुःख मे उसे बच्चे की प्राप्ति होगी। खोयी हुई कड़ी हमें इस वाक्य में प्राप्त हो जाती है। बच्चा उसे मिलेगा; परन्तु उसका मूल्य प्रसव-वेदना[1] है। कामना फलवती तो होगी; आपकी जो लालसा है वह वस्तु आपके सामने अवश्य आएगी; परन्तु उसकी कीमत आपको कष्ट के रूप में देनी होगी। 'दुःख मे उसे बच्चे की प्राप्ति होगी' यह उक्ति केवल स्त्री के लिए नही कही गई; अपितु प्रत्येक के लिए यह बात कही गई है। कामनाएँ अवश्य सफल होंगी, किन्तु मूल्य चुकाने पर। दुःख या कष्ट का क्या है तात्पर्य? इसका तात्पर्य है—सभी कामनाओं का त्याग। अपनी आकांक्षा की पूर्ति कौन देखेगा?

वही जो उसका मूल्य चुकाएगा, जो प्रसव-वेदना को सहन करेगा। जो प्राणपण से कामनाओं के अधीन अथवा आसक्त हो जाएगा, वह नहीं; बल्कि वह जो महाराजाधिराज के समान आकांक्षाओं मे रमण करता है। जो तटस्थ भाव से, आसीनवत् आकांक्षाओं में रमता है। केवल उसकी ही कामनाएँ पुष्पित-पल्लवित-फलित होती हैं।

क्या प्रार्थनाएँ सुनी जाती हैं?

लोगों का कहना है कि प्रार्थनाएँ सुनी जाती हैं। प्रार्थनाएँ क्या

---

१. प्रसव-वेदना=बच्चा जनने के समय की पीड़ा।

वस्तु है ? प्रार्थना शब्द का अर्थ कुछ व्यक्ति माँगना, चाहना, याचना करना, इच्छा करना, लालसा करना समझते है। यदि 'प्रार्थना' शब्द का यही भावार्थ है, तो क्या ऐसी प्रार्थनाएँ मुनी जाती है ? यह बात गलत है।

यदि प्रार्थना का शब्दार्थ आप याचना, माँगना, चाहना, अभि-लाषा करना मानते है, तो इस प्रकार की प्रार्थनाऍं कभी नही सुनी जाती।

माॅगने से कभी कुछ नही मिलता। याचना से कोई पदार्थ हाथ नही आता। आप माॅगने से कुछ नही पा सकते।

किन्तु प्रार्थना शब्द का तात्पर्य सामान्य से कुछ और ही है, कुछ अधिक है। प्रार्थना शब्द का सही अर्थ तभी प्रकट होता है, जब आप इच्छा से—लालसा से दूर हो जाएँ। 'The will be done.'

—प्रभो ! आपकी इच्छा पूर्ण हो। इस वाक्य मे आपकी अभिन्नता प्रकट होती है।

प्रार्थना का तात्पर्य माँगना, याचना करना, हाथ फैलाना, चाहना, अपनी कामना पूरी कराना कदापि नही। लोग प्रार्थना को अपनी इच्छा-पूर्ति का उपाय मानते है। आत्मा का अर्थ वे अपनी क्षुद्र आत्मा अथवा अन्य सभी से विच्छिन्न[1] भिक्षुक आत्मा समझते है।

परन्तु प्रार्थना का वास्तविक अर्थ—भावार्थ इस वाक्य मे है—'आपकी इच्छा पूर्ण हो।' जब शरीर सब तरह के कष्टो से, वेदना से, व्यथा से पीड़ित होता है, तब भी आपके अन्त करण मे यह भावना उत्पन्न होती है—"आपकी इच्छा पूर्ण हो।" यह अत्यन्त उचित तथा समीचीन है।

जिस समय आपकी देह रुग्ण होती है, जब आपके चहुँ ओर की

---

१. विच्छिन्न=भिन्न, अलग।

परिस्थितियाँ आपके विरुद्ध होती हैं, तब आपके अन्दर से यह विचार व्यक्त होता है—'आपकी इच्छा पूर्ण हो, (मेरी नही)।'

इसे ही समर्पण, आत्मत्याग तथा परिच्छिन्न आत्मा का समर्पण कहा जाता है। हृदय से उद्‌भूत, अन्तःकरण से निर्गत[1] प्रार्थनाओं का यही सार-तत्त्व है।

स्वार्थपूर्ण कामनाएँ नहीं सुनी जातीं

स्वार्थ-भरी कामनाओ वाली प्रार्थनाएँ कभी नही सुनी जाती। प्रार्थनाओं की सुनवाई तभी होती है, जब मन ऐसी स्थिति मे पहुँच जाए, जिसमे जगत् जगत् नहीं रहता। जिसमें पूरी तरह समर्पण किया गया हो, जब निज देह देह न रह जाए, मन मन न रह जाए, नातेदारो से कोई सम्बन्ध न रह जाए, सारे बन्धन कुछ समय के लिए टूट जाएँ। इस प्रकार की स्थिति के तुरन्त बाद आपकी आकांक्षा की अवश्य पूर्ति होगी। इस प्रकार की प्रार्थनाओं की सुनवाई तभी होती है कि जब कोई व्यक्ति एक विशेष स्तर तक ऊँचा उठ जाता है। जब वह देहाभिमान[2] से अतीत हो जाता है। सभी पदार्थो का पूरी तरह त्याग करके सर्वस्व ब्रह्मार्पण कर देता है। इस प्रकार की प्रार्थनाएँ भिखारी के समान माँगने की भावना वाली नही होती।

कुछ व्यक्ति इस प्रकार के है जो सामान्य ढंग से प्रार्थना नही करते। जो औपचारिक रूप से प्रार्थना करते नही दिखाई पड़ते। उनकी कामनाएँ—उनकी आकांक्षाएँ कैसे पूरी होती है? ये व्यक्ति किस प्रकार के है?

---

१. निर्गत=निकली।
२. देहाभिमान='मै शरीर हूँ' ऐसा अभिमान (अपने को शरीर मात्र समझना)।

मान लीजिए आपको कोई इच्छा हुई तथा आप याचना, कामना, उत्सुकता, विनती करते है। जिस समय तक आप उस भिक्षु की वृत्ति धारण किये रहते है, तब तक आपको कुछ नही मिलता। आपको विदित है कि जिस समय हमें महान् व्यक्ति से भेट करनी होती है, तो हम उसके पास अच्छे वस्त्र पहन कर जाते है। **परमेश्वर सबसे महान् है, सबसे ऊँचा है, निष्काम है, सब आवश्यकताओं से ऊपर है। यदि आप उसके समीप जाते हैं तो सुन्दर पोशाक पहनकर जाइए— ऐसे वस्त्र पहनिए जो उसके अनुरूप हों। परमेश्वर सभी आवश्यकताओं से परे है। उसके पास जाने के लिए सर्वोत्तम पोशाक यही है कि आप भी सब प्रकार की आवश्यकताओं से परे—'निष्काम' होकर उसके पास जाएँ।** यही सर्वोत्तम पोशाक है—परमात्मा के पास जाने की। उसके सम्मुख जाकर आपको याचना-वृत्ति से दूर—भिखारीपन से ऊपर होना चाहिए।

६. 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः'

वेदान्त और समाजवाद

सर्वप्रथम, जिसे 'समाजवाद' कहा जाता है, राम उसे 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद'[1] के नाम से पुकारना उचित समझता है। 'समाजवाद' शब्द इस प्रकार के शासन को प्रमुखता देना चाहता है, जिसमें समाज का जन-समुदाय पर शासन हो परन्तु, राम का कहना है कि इसकी सच्ची भावना इसी में है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता का, विश्व के परि-प्रेक्ष्य में आदर किया जाए। जहाँ व्यक्ति को कोई परेशानी न हो, कोई चिन्ता न हो, कोई झंझट न हो। इसी का नाम राम 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद' कहता है। लोग भले ही इसे चाहे तो 'समाजवाद', 'समष्टिवाद' नाम से पुकारे, परन्तु व्यक्ति के ही दृष्टिकोण का ध्यान रखना इसका ध्येय होना चाहिए। वेदान्त की यही शिक्षा है।

हम देखते हैं कि तथाकथित[2] 'समाजवाद' का उद्देश्य है—पूँजी-वाद के दुर्ग को गिराना, और यह वेदान्त के उद्देश्य से मिलता-जुलता है, क्योंकि वेदान्त भी आपको व्यक्तिगत स्वामित्व-भाव के परित्याग के लिए शिक्षा देता है। वेदान्त के मत हैं कि व्यक्तिगत धन-सम्पत्ति का विचार, सचय का भाव, स्वार्थमय अधिकार का भाव दूर होना चाहिए। यही वेदान्त है तथा यही समाजवाद। इस प्रकार दोनों का उद्देश्य एक ही है।

---

१. व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद=हर शख्स की अपनी आजादी।
२. तथाकथित=इस नाम से पुकारा जाने वाला।

वेदान्त समता का उपदेश देता है। और इसमे सन्देह नही कि सच्चे समाजवाद का भी यही उद्देश्य है। समाजवाद मे भी बाह्य धन-सम्पत्ति के लिए किसी प्रकार का आदर या सम्मान नही है।

यह आदर्श अति भयंकर तथा कठोर प्रतीत होता है। परन्तु जब तक मानव सम्पदा के भावो को, मोह को, अधिकार-लालसा को तथा आसक्ति को बिलकुल नही छोड़ देता, तब तक धरातल पर सुख या हर्षनही हो सकता। किन्तु समाजवाद की केवल इतनी ही माँग है कि मनुष्य धन-सम्पत्ति का मोह छोड़ दे। परन्तु वेदान्त में इसके लिए एक महान् कारण भी वर्णन किया गया है।

यह समाजवाद तो चीजो के केवल ऊपरी स्तर—बाहरी स्वरूप की ही छानबीन करता है, तथा यह परिणाम निकालता है कि मानव जाति को समता, बन्धुभाव तथा प्रेम के आधार पर जीवन व्यतीत करना चाहिए। वेदान्त इस दृश्यमान विश्व का अध्ययन और विश्लेषण प्राकृतिक एव आन्तरिक दृष्टिकोण से करता है। वेदान्त के मत मे, किसी व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति को व्यक्तिगत मानकर उस पर अपना अनन्य अधिकार जमाना—अपनी आत्मा, अपने अन्त करण के वास्तविक स्वरूप के प्रति अपराध है। वेदान्त के मत मे मानव का अधिकार केवल अर्पित करना—देना ही है, लेना अथवा माँगना नही। यदि आपके पास देने के लिए और कुछ नही है, अपने शरीर को ही कीडो द्वारा खाने दो। जो कुछ भी आप रखते है, उसका मूल्य या महत्त्व कुछ भी नही है, उसके कारण आप धनी नही कहे जा सकते। आप जो कुछ अर्पण कर देते है, उसी के कारण आप धनी कहलाते है। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करे, किसी चीज का मालिक बनने के लिए नही, वल्कि प्रत्येक वस्तु अपण करने के लिए।

ग्रहण में सुख—एक भ्रम

ससार सबसे बडी गलती यह करता है कि वह लेने मे सुख मानता

है। वेदान्त की माँग है कि आप सच्चाई की पहचान करें तथा ऐसी अनुभूति प्राप्त करें कि सच्चा सुख सर्वस्व समर्पण करने मे है तथा माँगने या लेने में वह नही है। जिस समय आप भीख माँगने की वृत्ति अपनाते है, उस समय आप अपने को स्वार्थी, संकुचित हृदय बना लेते है। तब आप अपने अन्त.करण के आनन्द को निचोड़कर बाहर फेंक देते हैं। आप कही भी हो, वहीं एक दाता के रूप मे आचरण करे, एक भिक्षुक के रूप में कभी नही। तभी आपका कार्य संसार में व्यापक तथा विस्तृत होगा। तब उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ भावना की गन्ध तक का प्रवेश नही हो सकेगा।

हिन्दुस्तान के वेदान्तिक साधु-महात्मा इस काल में भी इसी प्रकार का समाजवादी जीवन हिमालय पर बिताते है। प्रागैतिहासिक काल से ही वे इस प्रकार का जीवन बिताते चले आये है। वे कठोर श्रम करते है, बेकार नहीं बैठे रहते। वे न तो आलसी और आसानी पसन्द हैं, न भोगी और विलासी। कारण, उन्ही की चेष्टाओं से भारतवर्ष के उस विशाल तथा महान् साहित्य का सृजन हुआ है। ये व्यक्ति ही भारतवर्ष के सबसे श्रेष्ठ कवि, नाटककार, वैज्ञानिक, व्याकरणज्ञ, गणितज्ञ, ज्योतिषशास्त्रज्ञ, रसायनज्ञ तथा आयुर्विज्ञानी हुए हैं। तथा ये वे व्यक्ति हैं जिन्होंने धन को स्पर्श नहीं किया। ये ही वे ही लोग हैं, जिन्होने जहाँ तक सम्भव हुआ कठोर से कठोर जीवन बिताया। इसमें वेदान्त के समाजवाद पर लगाया जाने वाला लाछन सर्वथा प्रक्षालित हो जाता है कि वह मनुष्यों को भीरु, आलसी तथा पराश्रित बनाता है। वही व्यक्ति उत्तम रीति से से कार्य कर सकता है, जो अपने को स्वाधीन समझता हो।

वेदान्त तथा समाजवाद के अनुसार आपको अपनी पत्नी, बाल-बच्चों धनसम्पदा अथवा और सभी चीजों पर स्वामित्व कायम करने का कोई अधिकार नहीं है।

सभ्य मानव समाज का एक कलंक

सभ्य मानव समाज के मस्तक पर यह लाछन है कि नारी अव तक व्यापार की चीज बनी हुई है। मानव उसी अर्थ मे उस पर अपना कब्जा जमाता तथा शासन करता है जिस प्रकार कि वह पेड़-पौधो पर, मकानो पर या धन सम्पत्ति पर करता है। इस तरह सभ्य समाज में स्त्री के हाथ-पाँव बाँध दिये गये है। इसके विपरीत पुरुप अपने प्रत्येक कार्य में स्वाधीन है। नारी एक पुरुप की सम्पत्ति बन जाती है, कभी दूसरे पुरुष की।

समाजवाद तथा वेदान्त—दोनो के अनुसार यह स्थिति अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होती है, परन्तु स्त्री की स्वतन्त्रता की पहचान और पकड स्वय स्त्री को होनी चाहिए। इसके बिना उसकी स्थिति बदल नहीसकती। वह उतनी ही स्वतन्त्र है, जितना कि पुरुष। हाँ, इतना अवश्य है कि यदि पुरुष के लिए किसी वस्तु पर व्यक्तिगत सामाजिक अधिकार रखना उचित नही है, तो स्त्री के लिए भी यही उचित है—उसे भी धन-सम्पत्ति या पुरुष पर अपना अधिकार जमाने का कोई हक नही है। अपने मौज-मजे को बनाये रखने के लिए उसे भी पति पर अपना हक जमाने का कोई अधिकार नही।

यहाँ समाजवाद के विरोध में एक गम्भीर आपत्ति प्रस्तुत होती है। यदि समाजवाद द्वारा पुरुष तथा स्त्री को पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाती है, तो उससे तो समाज पशुत्व की दशा मे पहुँच जाएगा तथा ससार चरित्रहीनो, कामवासना के पुजारियो से भर जाएगा।

राम का कथन है कि पुरुष तथा स्त्री के लिए इससे अच्छी वात और क्या होगी ? गौ-भैस अपने काम-व्यापार मे अत्यन्त बुद्धिसंगत बर्ताव करते है। वे अत्यन्त युक्ति सगत[1] रहते है क्योकि ऋतुकाल में

---

१ युक्ति सगत=तर्क सगत, जिसे दलील ठीक माने।

ही सम्भोग करते है। यदि मानव व्यवहार भी उसी प्रकार हो जाए, तो सभ्य समाज की सारी लम्पटता[1], कामासक्ति तथा उच्छृंखलता समाप्त हो जाएगी।

कितनी विचित्र बात है कि लम्पट पुरुष को हम पशु या जानवर कहते है। क्या हम भारी गलती नही करते ? क्योंकि नि:सन्देह जानवर मनुष्य की अपेक्षा कम कामासक्त होता है। पशुओं मे अनुचित कामावेश तनिक भी नही होता। वे तभी सम्भोग करते हैं, जबकि उन्हें सन्तान उत्पन्न करनी हो। मानव की दशा इसके सर्वथा विपरीत है। जो मानव शान्त स्वभाव है, जो काम वासना से विकृत नही, वह कामासक्त मनुष्यो की अपेक्षा अधिक पशु-तुल्य जीवन बिताता है। अतएव काम-वासना से विकृत मानव को पशु नही कहा जाना चाहिए, पशु तो वस्तुत: आज का सभ्य मानव है। यह हमारे सभ्य समाज की ही विशेषता है, न कि आदिम असभ्य समाज की। असभ्य मनुष्य तो अधिक स्वाभाविक तथा तर्क संगत हुआ करते थे। उनका प्रत्येक कार्य ऋतु के अनुकूल तथा नियमित समय पर होता था (वे ऋतुकालाभिगामी होते थे)।

वेदान्त का तथा समाजवाद का भी मत है कि जितनी अधिक विकृत-हीनता तथा प्राकृतिक शान्तता की स्थिति प्राप्त होगी, उतने ही उत्तेजक भाव घट जाएंगे तथा इसके साथ ही साथ मानव में पति या पत्नी, पिता या पुत्र द्वारा 'कब्जा जमाने का विचार' नष्ट होता जाएगा।

"हमें इस पत्नी, इस बालक या इस भगिनी[2] की चिन्ता है" लगातार इसी प्रकार के विचारों का भार मानव को अपने अध्ययन अथवा

---

१. लम्पटता=कामुकता, कामीपन।
२. भगिनी=बहन।

आत्मसाक्षात्कार के मार्ग में बाधक बनता है। वेदान्त का समाजवाद आपकी छाती पर से इस बोझ को दूर कर देना चाहता है। वह आपको स्वतन्त्र बनाना चाहता है।

जिस समय आप अन्वेषण रूपी समुद्र मे उतरते है, तब आप जीत के झडे फहराते हुए बाहर निकलते है। जब आप किसी प्रकार का अनुसधान करने मे जुट जाते है, तो आप पूरी तरह सफल होते है। जब आप स्वतन्त्रता से, बन्धन मुक्त होकर, सब प्रकार के बाधा-बन्धन और चिन्ता तथा भय का परित्याग करके कार्य करते है, प्रतिक्षण आप अपने को स्वाधीन मानते है, तो आप निश्चय इस विशाल, विस्तृत विश्व को ही अपना घर समझ सकते है।

हमे केवल इतना ही काम करना है कि मानव यह समझ ले कि उनकी बीमारियो का, कमजोरियों का, मुसीबतो का, एक मात्र इलाज यही है—दूसरो पर कब्जा या अधिकार जमाने की भावना का परित्याग।

जब एक बार जनता की विशाल बहुसख्या इस तथ्य को हृदयंगम कर लेगी, तब समस्त विश्व मे समाजवाद जगल की आग की तरह फैल जाएगा।

यह वेदान्त-सम्मत[1] समाजवाद ही उन तमाम बीमारियो का एकमात्र इलाज है। जहाँ एक बार यह वेदान्ती समाजवाद ससार की समझ मे आ गया, तो यह पृथ्वी तुरन्त नन्दन-कानन बन जाएगी। उस समय हमारी विपरीत दृष्टि तथा इर्दगिर्द के वातावरण के विच्छिन्न ज्ञान से पैदा होने वाली आपत्तियाँ लुप्त हो जाएँगी।

यह वेदान्ती समाजवाद एक आदर्श कल्पना है। यदि इसकी

---

१. वेदान्त-सम्मत=वेदान्त द्वारा स्वीकार किया गया।

स्थापना हो जाए, तो सम्राटों, राष्ट्रपतियों, धर्मोपदेष्टाओं की आव-श्यकता नहीं रहेगी।

जब लोग वेदान्ती समाजवाद मे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हो जाएँगे, तब वे जिस कार्य को चाहेंगे स्वाधीनता से कर सकेंगे। जहाँ इच्छा होगी आ-जा सकेंगे, आज की भाँति वे अपने ही भाइयो से भयभीत नही रहेगे। वे परोपकार करेंगे तथा जन-हितकर कार्यों—अध्ययन, तत्त्व ज्ञान, आध्यात्मिक खोज आदि मे अपना समय नियोजित करेंगे, जिससे अपने सत्य आत्मस्वरूप के साक्षात्कार द्वारा पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हुए जीवन-मुक्त हो सकेंगे।

मानवता का आदर्श रूप

जब मानव सब देशो को अपनी आत्मा में ही अनुभव करने लगे, तो उसके लिए परोक्ष क्या है? उसके मन मे स्थान-सम्बन्धी चिन्ता किस कारण हो?

जब मनुष्य सब कालों में अपने को देखे, तो उसे अतीत, वर्तमान, भविष्य की चिन्ता क्या? जब सभी मनुष्यो तथा पदार्थों को वास्तव में अपना ही रूप जान लिया, तो आशका कैसी कि हाय फलाँ आदमी हमें क्या जाने क्या कहता होगा? जब करण कारण स्वयं बन गए, तो चित्त के विकारो का जहाज क्यो नही डूबेगा? तब तो चित्त पारे खाये मूषक की भाँति चेष्टाओं से रहित हो जाएगा, तब तो सहज समाधि ही स्वयं होगी।

राम ऐसी मनोदशा में क्या सोचे? क्या समझे? वहाँ त्रिकाल (भूत, वर्तमान, भविष्यत्) का क्या काम है? राम क्या सोचे और क्या समझे? त्रिलोक में उसका घर है, फिर वह किस घर मे मोह

करे ? जब वह नित्य तृप्त रहता है तो सुख का सागर स्वयं हो गया फिर राम क्या सोच-विचार करे ? क्या समझे ?

इस माया-नाश मे जो शान्तता तथा शक्ति प्राप्त होती है, इसे जानता वही है, जो इसका रस चख लेता है। राजा जनक ने इस अमृत का पान करने के उपरान्त अपनी अनुभूतियो का वर्णन इस प्रकार किया है—

नाहमात्मार्थमिच्छामि
गन्धान् घ्राणगतानपि ।
तस्मान्मे निर्जिता भूमिः
ंशे तिष्ठति सर्वदा । १ ।

नाहमात्मार्थमिच्छामि
रसानास्येऽपि तष्ठतः ।
आपो मे नर्जितास्तस्मात्
वशे तिष्ठन्ति नित्यदा । २ ।

नाहमात्मार्थमिच्छामि
रूपं ज्योतिश्च चक्षुषः ।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिः
वशे तिष्ठति नित्यदा । ३ ।

नाहमात्मात्मार्थमिच्छामि
स्पर्शान् त्वचि गताश्च ये ।
तस्मान्मे निर्जितो वायुः
वशे तिष्ठति नित्यदा । ४ ।

नाहमात्मार्थमिच्छामि
शब्दान् श्रोत्रगतानपि ।

तस्मान्मे निर्जिताः शब्दाः
वशे तिष्ठन्ति नित्यदा । ५ ।
नाहमात्मार्थमिच्छामि
मनो नित्यं मनोऽन्तरे ।
मनो मे निर्जितं तस्मात्
वशे तिष्ठति सर्वदा । ६ ।

—अपने मजे की ख़ातिर गुल छोड़ ही दिये जब ।
रूए-ज़मीं के गुलशन मेरे ही बन गए सब ।।
जितने जबाँ के रस थे कुल तर्क कर दिए जब ।
बस जायके जहाँ के मेरे ही बन गए सब ।।
खुद के लिए जो मुझसे दीदों की दीद छूटी ।
खुद हुस्न के तमाशे मेरे ही बन गए सब ।।
अपने लिए जो छोड़ी ख्वाहिश हवा खुदी की ।
बादे-सबा के झोके मेरे ही बन गए सब ।।
निज की गरज से छोड़ा सुनने की आरजू को ।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गए सब ।।
जब बेहतरी के अपनी फ़िक्रो-ख़याल छूटे ।
फ़िक्रो-ख़याले-रंगी मेरे ही बन गए सब ।।
आहा अजब तमाशा ! मेरा नहीं है कुछ भी ।
दावा नहीं जरा भी इस जिस्मो-इस्म पर ही ।।
ये दस्तो-पा है सबके, आँखें ये हैं तो सबकी ।
दुनिया के जिस्म लेकिन मेरे ही बन गए सब ।।
किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ।
आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा । १ ।

स बाह्याभ्यन्तरे देहे ह्यध ऊर्ध्व च दिक्षु च ।
इत आत्मा तथेहात्मा नास्त्यनात्ममयं जगत् । २ ।
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि ।
किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं संविन्मयं ततम् । ३ ।
स्फारब्रह्मामलाम्भोधिः फेनाः सर्वे कुलाचलाः ।
चिदादित्य-महातेजो मृगतृष्णा जगच्छ्रियः । ४ ।

—कहाँ जाऊँ ? किसे छोड़ूँ ? किसे ले लूँ ? करूँ क्या मै ?
मै इक तूफाँ कयामत का हूँ ! पुर हैरत तमाशा मै !
नहीं कुछ जो नहीं हूँ मै, इधर मै हूँ, उधर मै हूँ ।
मै चाहूँ क्या ? किसे ढूँढूँ ? सबों में ताना बाना मै ।
मै बातिन, मै अयाँ, जेरो-जबर, चपरास्त पेशो-पस ।
जहाँ मै, हर मकाँ मै, हर जमाँ हूँगा, सदा था मै ।।

तृष्णाओं के निग्रह[1] का साधन : ब्रह्मचर्य

अरे पश्चिमी विद्याओ तथा कलाकौशल की गन्ध से चकित-विस्मित होने वाले प्रिय भारतवासियो ! आपको राम कहाँ तक समझाए ! तनिक आप ही होश मे आ जाइए । जरा गम्भीरता से विचार तो कीजिए, तो आपको विदित होगा कि ये सब रेले, तार, तोपे, बन्दूके, वाष्पइजन, कारखाने आदि जिनकी तारीफ से फूले नहीं समाते हो, एक इच बराबर भी पिछले लोगो की बजाय आजकल के लोगो को आनन्द नही प्रदान कर रहे ।

राम के कथन का यह तात्पर्य नही है कि आप पिछले काल की बहलियो तथा इक्को को फिर से प्रचलित करे और वाष्प तथा विद्युत् के यन्त्रो को भारत मे पाँव न रखने दे । उसका मतलब यह

---

१. निग्रह=वश करना ।

है कि इन नये अतिथियों का उचित मूल्यांकन कीजिए, उन्हें यथोचित सम्मान दीजिए, किन्तु ऐसी बात नहीं होनी चाहिए कि घोड़ा खरीदता था सवारी करने के लिए उल्टे वह सवार को ही कुचलकर भाग चला। बिल्ली के बदले अपनी पावन माता (ब्रह्मविद्या) को मत बेच दीजिए। एक अनावश्यक मनबहलाव की क्रीड़ा में अपनी आत्मा तथा प्राणों की बाजी मत हार बैठिए। सुख की तलाश करते हुए सुख की धज्जियाँ न उड़ाइए। वर्षा-ऋतु में पपीहा वृष्टि-जल की बूंदों के लिए अधीर हो ऊपर को उडान भरता है; परन्तु बरसते जल में वह प्यासा रहता है। उसे जल की खोज ही जल से दूर रखती है। इस प्रकार अपनी दशा मत होने दीजिए। रीछ की तरह दोस्त के मुख पर से मक्खी उड़ाते हुए मित्र को थप्पड़ मार कर उसका प्राणहरण मत कीजिए।

पाश्चात्य कलाएँ तथा आविष्कार अंश (विषय भोग की सामग्री) बढ़ाने की चिन्ता में है। तथा उस उपाय द्वारा वे आनन्द की राशि को अधिक करना चाहते है।

$$\text{आनन्द} = \frac{\text{विषय-भोग की सामग्री}}{\text{तृष्णाओं का समुदाय}}$$

भारतीयो! आप पश्चिम की नकल तो करने लगे हो; परन्तु देखना अंश (विषय-भोग की सामग्री) को बढाते समय हर तृष्णाओं का समुदाय उसी निष्पत्ति (संख्या) से नही, अपितु उससे भी अधिक संख्या में बढ़ता जाता हे। जैसे नशई व्यक्ति आनन्द के लिए अफ़ीम या शराब का सेवन करता है और इसकी मात्रा को नित्यप्रति परिवर्धित करता जाता है, उधर नशे की तृष्णा भी वैसी ही अधिक होती जाती है, जो आनन्द मे बहुत कम मात्रा में मिल जाता था, वह आनन्द अब अधिक मात्रा मे भी नहीं मिलता। आयु वृथा ही नष्ट होती जाती है। अफीम या शरीर के अधीन अकारण ही बनना

पडता है। यो भी देखिए कि आप अश को कहाँ तक बढा लेगे ? भोग के सामान कहाँ तक एकत्र करेगे ? बाह्य सामान अपरिमित कदापि नही हो सकते, सदा भिन्न (fraction) कमी मे ही रहेगी। इसी आनन्द की राशि को बढाने के लिए हिन्दुओ की रीति यह है कि तृष्णा को जो हर के स्थान पर है, घटाना आरम्भ कर दीजिए **तृष्णा जैसे-जैसे सिमटती चली जाएगी, आनन्द का परिणाम वैसे-वैसे परिवर्धित होता चला जाएगा।** जिस समय तृष्णा सर्वथा शून्य हो जाएगी, तो अंश भले ही कुछ हो, चाहे न हो, समस्त राशि अनन्त हो जायगी। तथा यह तृष्णा (हर) केवल ज्ञान के द्वारा की मिट सकती किसी अन्य उपाय द्वारा कदापि नही।

एक व्यक्ति ने लैला-मजनूँ की कहानी पढी। पढते ही मजनूँ बनने की इच्छा उमड आई। उसने लैला का एक चित्र बनाया तथा उसे हृदय से लगाकर फिरने लगा। अब मजनूँ वाला प्रेम तो उसके मन मे था नही। परन्तु मजनूँ के अभिनय का बीड़ा उठा लिया। धिक्कार है इस प्रकार के मजनूँ बनने पर, न इधर के रहे न उधर के रहे।

अरे आज के भारतीय ! यदि तुम्हें अगरेजो का अनुकरण करना ही मजूर है तो उनका प्रेम, साहस, दृढ़ता, एकता लेलो, उनकी सनक लेलो, किन्तु उनकी प्रेमपात्र लैला (ससार के नश्वर भोग-विलासो) को मत ग्रहण करो। यदि मजनूँ और प्रेमी ही बनना हो तो अपने घर की तेजोमयी ब्रह्मविद्या के बनो। अपने पहलू से चन्द्रमुखी[1] प्रिया को उठाकर संसाररूपी बुढिया के चित्र पर दीवाने तथा आसक्त होना तुम्हे कलंकित कर देगा। हाँ, इस ससाररूपी वृद्धा को अपनी चन्द्रमुखी ? कान्ता—ब्रह्मविद्या की एक तुच्छ दासी बना लेने मे कुछ हानि नही है।

भारतीय इतिहास गवाही देता है कि शक्ति से परिपूर्ण कर देने

---

१ चन्द्रमुखी—चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखड़े वाली।

वाली ब्रह्मविद्या का भारतीयों ने जब कभी अनादर किया, तभी उन्होंने नीचा देखा। अपने स्वरूप के महत्त्व को विस्मृत करके हिन्दू लोग जब कभी इन्द्रिय तुष्टि के फेर में पड़े, वे तभी मरे।

अभी समय है, सँभल जाइए। शरीर के कीचड से निकल कर बाहर आइए। अपने शुद्ध स्वरूप में निवास कीजिए। शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम् की ध्वनि ऊँची होने दीजिए। तथा आनन्द के कैलास पर पवित्र ॐ की ध्वज लहराइए।

"यदि गृह कलह, दुर्भिक्ष, महामारी आदि अस्वीकार है, तो पवित्रता, ब्रह्मचर्य, हृदय-शुद्धि, निर्मल आचार-व्यवहार को अमल में लाइए। देश में प्रेम तथा जातीयता कदापि स्थायी नहीं रह सकते। जब तक कि जनसंख्या की वृद्धि तथा जमीन की पैदावार परस्पर एक-दूसरे के अनुरूप न रहे।

इवोल्यूशन[1] के नियम जो डारविन तथा उसके अनुयायी वैज्ञानिकों ने बतलाए है, यदि वे पशु आदि के लिए सच हों, तो भी हे सम्पूर्ण संस्कृति मे श्रेष्ठ प्राणी। तुझे वे कदापि शोभा नही देते कि तू जंगली जानवरो की अधीनता मे घुटने टेक कर बैठे और पाठ पढ़े तथा उन से यह उपदेश ग्रहण करे कि स्वार्थपरता से उत्तेजित होकर दुर्बलों का रक्तपान करना प्राकृतिक नियमों का अनुकरण है। तीसमारखाँ बनकर वासनाओं की लाश का आहार करा क्या भलाई है? और...

प्रियवर! तुम चुन लिये गये हो। तुम्हारे लिए लंगूर तथा चीते का युग व्यतीत हो चुका है। इन्सान को खाने वाले नाखूनों, दाँतों, सींगो का राज्य भी बीत चुका है। अब फाड़ खाने का या दुम हिलाने का समय नही रहा। तुम अब रूढ़िवादी की भांति सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रों की इस छोटी से देह के इर्दगिर्द मन घुमाओ। स्वार्थपरता को

---

१. इवोल्यूशन = विकासवाद।

त्याग दो और इस शरीर-रूपी धरती को परमार्थ रूपी सूर्य पर निछा-वर कर दो।

ऐ अद्वैत सागर की तरग ! प्रिय नर रूपी नारायण ! नित्य प्रसन्न मनुष्यों के कहकहे मे, कोयल की कूक में, वीर की युद्ध घोषणा में, अत्याचार-पीड़ित के हृदय-विदारक आर्तनाद में, कलियो की चटक मे, नाज़नियो की मटक में, तेरी ही खटक है।

उस देश के निवासी, जहाँ की कन्याएँ सावित्री आदि अपनी पवित्रता की शक्ति से यमराज के चंगुल से पुरुष को छुड़ा लाती थीं, और जहाँ के लड़के नचिकेता जैसे साक्षात् मृत्यु के मुँह से अमृत निकाल लाते थे, उस देश के निवासी प्रिय भारतीयो ! तनिक गौर करके बताओ कि तुम अपने को अमर पाते हो या मर जाने वाले ? तुम्हारे भीतर आनन्द ही आनन्द हर समय प्रकाश डालता है या शोक तथा क्रोध का अन्धकार ही छाया रहता है ? तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति दिखाई पड़ती है या सड़ती हुई दुर्बलता की दुर्गन्धि ? यदि तू नाशवान्, दुखिया या दुर्बल है तो यह पाप का फल है कि तू ब्रह्महत्या कर रहा है। बुद्धि रूपी गौ को सासारिक इच्छाओ (कसाइयों) के हाथ बेच रहा है ! क्षणिक इच्छाओ की गुलामी को ड्यूटी मान कर खून-माँस के कैदखाने में तू टोकरी ढो रहा है !

जो व्यक्ति अपने आपको एक बार जान लेता है, उसके लिए विश्व मे इस प्रकार की चीज रह जाती है, जिसकी वह चाह करे। राजा-महाराजाओ के भण्डार और कोष की तो बात ही क्या, समस्त ससार का कोई भी पदार्थ उसका ध्यान अपनी ओर नही आकर्षित कर सकता। विश्व का कोई भी सौन्दर्य या लावण्य उसे अपनी ओर नही खीच सकता। विज्ञान के सारे खजानो मे भी उसके लिए कोई इस प्रकार की चीज नही, जो उसे ललचा सके।

अरे ऐसा सुख ! ऐसी चरम प्रसन्नता, ऐसा पूर्ण आह्लाद कितना

वर्णन से बाहर है ! भाषा उसका बयान नही कर सकती । अरे अनन्त आनन्द, वह चरम कोटि का आह्लाद, यह वह सीमातीत सुख है, जिसकी तुलना में अन्य सुख नही ।

वह तुम ही तो हो । वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है । इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होते ही, तुम सभी आवश्यकताओं से ऊपर उठ जाते हो । इसे प्राप्त करते ही तुम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी बन जाते हो ।

ससार के बखेड़ों, लालसाओ, मृग-तृष्णाओं तथा माया-मोह के पीछे, जिस अनन्त आनन्द-सुख को त्याग कर ओह ! संसारी लोग कितनी भूल करते है ।

सम्पूर्ण आनन्द तुम्हारा है । तुम वही हो । उसकी खोज क्यो नहीं करते ? अपने जन्मजात दायभाग पर अधिकार क्यों नही करते ? ईसो की तरह लोग अपनी जन्मजात दौलत (परमानन्द) को पेट के लिए बेच देते हैं । जूडास इसकेरियट ने चाँदी के तीन टुकड़ो के लिए ईसामसीह को बेच दिया था । अपने ही आत्मस्वरूप ईसा को— स्वामियो के स्वामी को—इस संसार के माया-मोह और सुखो के लिए मत बेचो । तनिक बुद्धिमत्ता से काम लो ।

वास्तविक सुख तुम्हारे अपने अन्तःकरण मे है । स्वर्ग के अमृत का महासागर तुम्हारे अपने अन्दर है । उसकी खोज करो, उसकी जानकारी प्राप्त करो ।

तुम्हारा वास्तविक स्वरूप न शरीर है, न मन, न बुद्धि । वह न इच्छा है, न इच्छुक, न इच्छा का विषय ही । तुम इन सभी से ऊपर हो, नित्य हो ।

तुम हंसते हुए पुष्प के रूप में, चमकते हुए तारों के रूप मे, प्रकट होते हो । संसार में है ही क्या जो तुम्हें लालायित कर सके ?

तनिक ॐ का जाप कीजिए, ॐ उच्चारण कीजिए । अपनी

समस्त शक्तियाँ उसी स्वर मे भर दीजिए। अपना सम्पूर्ण अन्त करण उसी में लगा दीजिए। उसकी अनुभूति प्राप्त करने मे अपना सम्पूर्ण बल लगा दीजिए।

यदि कर सके तो आप ॐ का जाप करते हुए अपनी दुर्बलताओं तथा प्रलोभनो को दूर करते जाइए। उन्हे अपने पैरो तले कुचलते हुए—हृदय से निकाल फेकिए। उनसे ऊँचे उठिए। उन पर विजय प्राप्त कीजिए।

पुराणो मे एक कथा आई है। उसमे श्रीकृष्ण के यमुना में (कालीदह मे) कूदने का वृत्तान्त है। श्रीकृष्ण को कालीदह मे कूदते देखकर माता-पिता, इष्टमित्र, सम्बन्धी-कुटुम्बी चकित-स्तब्ध रह गये। वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये। उन्होने समझा कि कृष्ण अब गया। अब वह कभी बाहर नही निकलेगा। कथा मे बताया गया है कि श्रीकृष्ण नदी की उस तह पर जा पहुँचे, जहाँ सहस्र फणो वाला कालिय नाग रहता था।

श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाने लगे। वे बाँसुरी पर ॐ मत्र का गान करने लगे। वे नाग के फणो को पैरो से ठुकराने लगे। एक-एक करके वे नाग के सिरो को कुचलने लगे। परन्तु ज्योही उन्होने नाग-फणो को एक-एक करके चूर्ण-विचूर्ण किया, त्योही दूसरे फण निकल आये। इस प्रकार उन्हे अत्यन्त कठिनाई हुई। परन्तु श्रीकृष्ण निरन्तर नाग के फणो पर नाचते-कूदते रहे। वे अपनी मुरली से मत्रो का गान करते रहे। वे निरन्तर ॐ मत्र का जाप करते हुए नाग के सिरो को रौद रहे थे। यमुना नदी का पानी लहू से भर गया। नाग की सब नागिनियाँ कृष्ण की पूजा करने आई। वे श्रीकृष्ण की मुग्धकारी मूर्ति का अमृतपान करने को उत्सुक थी। श्रीकृष्ण यमुना से बाहर आये। उनके सम्बन्धी तथा इष्टमित्र चकित होकर उन्हे देखने लगे, मानो उनके प्राण ही लौट आये हो। अपने प्राणप्रिय श्रीकृष्ण को प्राप्त

करके, अपने प्राणप्रिय को पुनः अपने बीच में देखकर उन्हे इतनी प्रसन्नता हुई कि इसका वर्णन नही हो सकता। इस कथा की दो प्रकार की व्याख्या है। मानो यह उनके हेतु शिक्षादायक उपदेश है, जो व्यक्ति अपनी आत्मा की सत्यता का ज्ञान उपलब्ध करना चाहते है। इस कथा मे यमुना नदी मन की प्रतीक है। अब जो कोई श्रीकृष्ण बनने की इच्छा रखता है, जो कोई अमृत प्राप्त करना चाहता है, उसे अपने-आप में गम्भीर गोता लगाना होगा। उसे अपनी मन की यमुना मे गहरा उतरना होगा। उसे विषय रूपी विषधर नाग का—राग-द्वेष के सर्प का सामना करना पड़ेगा। उसे विषय-वासना के सांप को नष्ट करना होगा। अब यह है कि साधक को सबसे पूर्व अपने मन की नदी को विषरहित करना चाहिए। अपने मन को निर्मल बना लेना चाहिए।

मन को निर्मल करने का ढंग क्या है? वह ढंग यही है कि जिसका श्रीकृष्ण ने अनुसरण किया था। उसे अपनी बाँसुरी के द्वारा ॐ मंत्र का गान करना होगा। उसे बाँसुरी के द्वारा उस दिव्य, कल्याणकारी गीत को गाना होगा।

यह बाँसुरी क्या वस्तु है? सामान्यतः यह सिर्फ़ एक साधारण वस्तु है। बाँसुरी को ओर ध्यान से देखिए। भारतीय कवियों ने उसे बहुत महत्व दिया है। इस प्रकार का कौन-सा महान् कार्य बाँसुरी ने किया है कि उसे विचारक इतना ऊँचा पद देते हैं? किस महान् कार्य के बल पर उसे इतना गौरव मिला है?

श्रीकृष्ण पूजनीय थे। महाशक्तिवान् सम्राटों के प्रेमपात्र थे। सुविशाल भारत में हजारों सुन्दरियाँ उनकी उपासना करती थीं। श्रीकृष्ण परम मित्र थे, शक्तिवान् थे, प्रेममूर्ति थे, बड़े-बड़े महाराजा तथा सम्राट् उनकी दयादृष्टि की याचना किया करते थे। वही श्रीकृष्ण इस बाँसुरी को क्यों चूमते थे? ऐसे गौरव-पूर्ण स्थान पर इस बाँसुरी

को किसने पहुँचाया ? बाँसुरी का उत्तर था—मुझमें एक गुण है कि मैने अपने को अन्य पदार्थों से रिक्त कर डाला है। बाँसुरी सिर से पैर तक खाली-पोली है। उसने कहा—मैने अपने को अनात्म से रिक्त कर लिया है।

इस प्रकार कथा मे बताया गया है कि बाँसुरी को अधरो से लगाने का अर्थ है—मन को निर्मल करना—विषय-वासनाओ से खाली करना—मन को ईश्वर में लीन करना, प्रत्येक पदार्थ को ईश्वर के चरण-कमल में भेट करना। शरीर पर कोई दावा न रखो। सारा स्वार्थ भाव छोड़ दो। इनसे ऊँचे उठो।

ईश्वर की पूजा करना, उसका उस प्रकार पूजन करना जैसे कोई संसारी अपनी प्रियतमा से प्रेम करता है, अच्छी आत्मा की अनुभूति के लिए उसी प्रकार भूख-प्यास सहना, परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल होना, सत्य के दर्शन के लिए उत्कट इच्छा करना, अपने परम स्वरूप का आनन्द प्राप्त करने के लिए उत्कण्ठित होना—चित्त की इस दशा में, इस शान्ति मे, ऐसे शुद्ध अन्तरतम से ॐ मन्त्र का उच्चारण कीजिए।

बस यही है बाँसुरी मे सगीत की लय भरना। अपने सादे जीवन को बाँसुरी बना लो। अपनी सम्पूर्ण देह को बाँसुरी बना डालो। उसे काम-वासना, स्वार्थ-भावना से रिक्त कर दो। उसे परमेश्वर के रूप से परिपूरित कर दो।

शुद्ध आचरण का निर्माण कीजिए। अपने चाल-चलन को शुद्ध कीजिए। निश्चय को दृढ कीजिए। प्रबल प्रतिज्ञा कीजिए। अटूट सकल्प कीजिए। जब यमुना से बाहर आओ, तब विष-पूर्ण जल तुम्हे विष-युक्त न करने पाये। इसलिए कि जो कोई उस पानी को पिये—उसे विष न चढे।

उस जल को पूर्णतया निर्मल करके मन रूपी नदी से बाहर

आइए। भले ही लोगो का तुमसे मतभेद हो, भले ही वे तुम्हे हर प्रकार के संकटो में डालें, वे भले ही तुम्हे वदनाम करे, किन्तु उनकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता—उनकी धमकियों और मधुर वचनों के होते हुए भी तुम्हारे मन की नदी से दिव्य, निर्मल, ताजे जल के सिवाय और कुछ नही निकलना चाहिए।

तुम्हारे अन्दर से सदा ही अमृत का स्रोत प्रवाहित होता रहे, ताकि तुम्हारे लिए स्वार्थ-बुद्धि असम्भव हो जाए। हृदय को निर्मल करो। ॐ अक्षर का गान करो। निर्बलता के सभी स्थानों को चुन-चुनकर जड़ से उखाड़ फेको। सुन्दर चरित्र का निर्माण करके—कुन्दन वन जाओ। विनयी वन जाओ। मन की वासनाएँ मिट जाने पर, श्रेष्ठ वस्तुओ का लाभ तुम उसी प्रकार आपसे आप पाओगे, जैसे नाग की नागिनियों ने नदी तल मे श्रीकृष्ण की पूजा की थी।

नाग के दमन पर नागिनियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी।

अपने अभ्यास के लिए एक मानचित्र वनाइए। उसमें सामान्य पापों और त्रुटियो की सूची वनाइए। इस मानचित्र के चित्रित हो जाने पर आप सप्ताह के किसी दिन से काम शुरू करें। यदि किसी दिन आपको लोभ से, काम-वासना से या शोक से वेदना हुई हो, तो आप सीधे लोभ, वासना या शोक शीर्षक के खाने में उस दिनांक के सम्मुख क्रास चिह्न × लगाओ। उसी तरह अपनी अन्य त्रुटियो को क्रास × चिह्न लगाएँ। इसी रोजनामचे से आप अपनी त्रुटियो को अपने सम्मुख ला सकते हैं। तभी आप अपनी त्रुटियों और कमजो-रियों को सामने रख कर उन्हे हरा सकते हैं।

ये चिह्न केवल मानचित्र मे ही नही वने रहने चाहिए। आज यदि तुम से कोई भूल हो जाती है, तो तुम अपने प्रति सच्चे वनकर आज ही मानचित्र पर क्रास का चिह्न वना दो। सर्वथा अकेले एकान्त में वैठकर अपने सम्मुख नक्शा खोल लो। उसमे तुम्हे दिखाई देगा

कि तुम लोभ, वासना या शोक से अथवा किसी अन्य दुर्बलता से ग्रस्त हो—बस, उस दोष को जड़ से उखाड़ फेकने का प्रयत्न करो।

भारत देश मे तुमने जन्म लिया है—दूसरो के अनेक उपदेश सुने है—अपने समय के भले ही वे सबसे महान् उपदेशक हो, चाहे स्वयं ईसा या परमात्मा भो आकर उपदेश दे; परन्तु औरो के उपदेशो से तब तक कोई लाभ नही हो सकता, जब तक तुम अपने आपको सुधारने का प्रण नही ठान लेते। जो खुद अपने को उपदेश देता है, वही लोभ, वासना और शोक से छुटकारा प्राप्त करत ा है।

अब इस भावना की परीक्षा कीजिए—उसके लक्षणो को पहचानो—लोभ—वासना—शोक के वशीभूत तुम कैसे हो गये थे ? कारण निर्धारित करो। उसके बाद ठोक दवा करो। उसी समय किसी ज्ञानोपदेश से भरी पुस्तक का पाठ करो, जैसे श्रीमद्‌भगवद् गोता, उपनिषद्, इजील, इमर्सन की रचनाएँ। ये तुम्हे ऊपर उठाएँगी। इनकी सहायता से तथा अपने उपदेश पर विचार और मनन से—उस बुरी भावना को मन से निकाल बाहर फेको। यदि उस समय तुम्हे इसका पूर्ण निश्चय हो जाए कि तुमने विजय प्राप्त कर ली है तो तुम पुन. कभो परास्त नही होओगे, भले ही तुम पर सकटो का पर्वत ही क्यो न टूट पड़े।

जब तुम्हे इस प्रकार का विश्वास हो जाए कि तुमने उस कम-जोरी को कुचल डाला है, जब तुम्हे अपनी विजय का पूरा निश्चय हो जाए, तब उस क्रास चिह्न को मिटा दो। वस, तुम मुक्त हो। फिर अतीत की दुर्बलताओ के लिए अपने को धिक्कारना व्यर्थ है। भूतकाल समाप्त है—मृत है।

इसी तरह एक के बाद एक—अपनी कमजोरियो को निकाल बाहर करते रहो। प्रत्येक दोष के लक्षण तथा पूर्व लक्षण स्थिर करके अपने

आपको उपदेश दो। लक्षण तथा पूर्व लक्षण ठीक करने से पूर्व तुम में से प्रत्येक को—अपने आपको उपदेश देना होगा।

प्रत्येक मनुष्य को अपना काम—अपना उत्थान आप ही करना होता है। ध्यान करते समय ॐ का उच्चारण करो। जिस समय ओठ ॐ शब्द का उच्चारण कर रहे हो, जब वाणी पावन मन्त्र का जाप कर रही हो, जब तुम अपनी प्रतिज्ञाओं के पालन के लिए अटूट संकल्प कर लेते हो, तब अनन्त कल्याणकारी दिव्य आशीर्वाद तुम्हे स्वय प्राप्त होता है।

तब तुम अन्दर से शक्ति का अनुभव करोगे। तुम्हारे इन्हीं मनोरोगो को कथा में सहस्रो फणों वाले नाग से उपमा दी गई है।

वस्तुतः सारी त्रुटियों का एक सामान्य कारण है। हमारे सभी दोषो का एक समान आधार है—अज्ञान।

सब तरह का अज्ञान, विशेषतः शुद्ध आत्मस्वरूप का अज्ञान ही सभी त्रुटियो का मूल कारण है। लोग अपने को शरीर से अभिन्न मानते हैं। उसके आसपास सभी प्रकार के पदार्थ एकत्र करते हैं। बाह्य सुखों की लालसा से लालायित होते हैं। वे शरीर से अभिन्न हो गये हैं। इसीलिए शोक से व्याकुल या दुःखी होते है। और होने योग्य भी है। शरीर से ऊपर उठो। यह जानो—अनुभव करो कि तुम अनन्त परमेश्वर हो। फिर संसार के लोभ, वासना या द्वेष से तुम किस प्रकार प्रभावित हो सकते हो?

प्रकृति के सामान्य नियमो का अज्ञान, सत्य आत्मा के स्वरूप के अज्ञान का एक भाग है। यह अज्ञान ही लोगों को दुर्बल बनाता है। उसी के अनुसार प्रकृति का एक अटल तथा परम पावन नियम है जो किसी तरह भी टाला नही जा सकता। वह नियम इस प्रकार है—कोई भी पाप मत करो, कोई भी शरारत मत करो, अपने मन में किसी भी तरह का अन्याय न आने दो। ये बुरे काम, ये घोर पाप

भले ही तुम इस प्रकार के स्थान पर क्यों न करो, जहाँ तुम्हें निश्चय हो कि तुम्हे कोई भी नही देख रहा, कोई भी तुम से जवाब नही माँगेगा—परन्तु प्रकृति के अति कठोर, निर्दय, अमोघ तथा अनिवार्य कानून के अनुसार तुम्हें ब्याज-सहित अपने कर्मों का मूल्य चुकाना पड़ेगा। बुरे कर्मो का परिणाम कभी भी शुभ नही हो सकता। बुरे कर्मो के फलस्वरूप तुम्हे पीड़ा तथा दु ख अवश्य भोगना पड़ेगा।

लोग इस सचाई को सामाजिक सदाचार सम्बन्धी कानून मानते है, और कहते है कि इसमे गणित-शास्त्र के नियमो जैसी शक्ति नही होती। वे कहा करते है कि इसमे गणित शास्त्र के नियमो जैसी निश्चयात्मकता नही है। ऐसा समझने वाले वास्तव में भ्रान्त है। अत्यन्त सुनसान गुफा में भी कोई पाप करो, तुरन्त तुम्हे यह देखकर आश्चर्य होगा कि तुम्हारे पैरो के नीचे की घास तक तुम्हारे विरुद्ध साक्षी दे रही है। समय-समय पर तुम देखोगे कि दीवारों तथा पेड़ो को भी जुबान लग गई है और वे बोलने लगे है।

तुम परमात्मा तथा प्रकृति से छल नहीं कर सकते। यह एक अटल, अटूट नियम है।

हम सिर्फ मन के भीतर पाप की बात सोचते है तथा बाह्य संसार में हम अपने आपको अनर्थकारी, पीड़ादायक परिस्थितियो से घिरा हुआ पाते है। भाँति-भाँति की कठिनाइयाँ हमारे सम्मुख आ खड़ी होती हैं। इस प्रकार की स्थिति मे जिन्हे अपनी विपत्तियों के वास्तविक कारण का ज्ञान नही होता, वे उस परिस्थिति को दोष देते है। वे आस-पास की वास्तविक स्थिति से युद्ध करने लगते है। वे सम्बन्धियो से, इष्टमित्रो से मुकदमेबाजी करने लगते है। परन्तु यह एक दिव्य कानून है कि जिसकी वनो मे, जगत् मे, ससार के कौने-कौने में घोषणा करने की आवश्यकता है कि ईश्वर की आँखो मे धूल झोकने का प्रयत्न करता हुआ मनुष्य स्वयं अन्धा हो जाता है—अज्ञानान्ध।

प्राकृतिक नियम अथवा दैवी विधान का यह आदेश है कि आप सदैव पवित्र रहें। यदि आप मन मे अपवित्रता को स्थान देंगे, तो उसका बुरा परिणाम आपको सहना पड़ेगा।

इन आध्यात्मिक नियमों पर हमे एक-एक करके विचार करना पड़ेगा। तव ये गणित-शास्त्रीय निश्चयात्मकता के साथ सिद्ध होंगे।

एक वार जव कोई व्यक्ति इन आध्यामिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो उसके लिए वासनाएँ, स्वार्थ भरी इच्छाएँ अग्राह्य हो जाती हैं। अपनी इच्छाओ को वश मे कर लेने के वाद मन को आप चाहे जितनी देर तक चाहे उतनी देर तक एकाग्र कर सकते हैं।

उपवास का महत्त्व

अपने मन पर विजय प्राप्त करने के लिए उपवास करना सहायक है। राम का कथन यह नही कि भूखे मरो। उसका तात्पर्य इतना ही है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'—अति किसी वात की भी नहीं होनी चाहिए। भोजन के दास या गुलाम मत वनो। इसी प्रकार उपवास के भी दास मत वनो।

पहलवान का उदाहरण

एक पहलवान था। उसे अपने शरीर से वड़ा मोह था। गोदना गुदवाने के लिए उसने एक नाई को वुलाया। उसने नाई से कहा—दोनों वाँहो पर एक वड़ा तेजस्वी सिंह चित्रित कर दो। मेरा जन्म सिंह राशि में हुआ है, लग्न वहुत उत्तम थी तथा मैं वड़ा शूरवीर हूँ। लोग मुझे ऐसा समझते भी है। नाई ने सुई लेकर सिंह का चित्र गोदना आरम्भ कर दिया। परन्तु तनिक-सी सुई चुभोते ही पहलवान को पीड़ा हुई। वह साँस खींचकर नाई से कहने लगा—"ठहरो ठहरो, यह क्या कर रहे हो?" नाई ने उत्तर दिया—"मैं शेर की

पूँछ चित्रित कर रहा हूँ ।" वस्तुतः यह व्यक्ति सुई चुभने की पीड़ा न सह सका तथा भद्दा-सा बहाना बनाकर कहने लगा—"तुम यह नहीं जानते कि शौकीन लोग अपने कुत्तो तथा घोड़ो की दुम कटवा डालते है। इसी प्रकार दुम कटा सिह ही सबसे बली माना जाता है। तुम सिह की पूंछ क्यों बनाते हो ? उसकी कोई आवश्यकता नही है।"

नाई ने कहा—"विचित्र बात है ! अच्छा मै सिह की पूँछ नही चित्रित करता, परन्तु मुझे उसके शेष अग तो चित्रित करने दो।"

नाई ने फिर सुई उठाई और पहलवान के शरीर में झोंकी। पीडा से त्रस्त होकर पहलवान इस बार भी कहने लगा—"अब क्या करने लगे हो ?" नाई ने उत्तर दिया—"अब मैं सिह के कान चित्रित करने लगा हूँ।" पहलवान बोला—"अरे नाई तू बहुत मूर्ख है। क्या तू नही जानता कि लोग अपने कुत्तो के कान कटवा डालते है। लम्बे कानों वाले कुत्ते घरों मे नही रखे जाते। क्या तू यह नही जानता कि बिना कानो का सिह ही सबसे श्रेष्ठ होता है।"

नाई ने हाथ रोक लिया। कुछ देर बाद नाई ने फिर सुई उठाई और पुनः गोदने लगा। पहलवान सुई से होने वाली पीड़ा फिर न सह सका और कहने लगा—"नाई ! अब तू क्या करने लगा है ?"

नाई ने उत्तर दिया—"अब मै सिह की कमर चित्रित करने लगा हूँ।" पहलवान बोला—"तूने भारत के काव्य नही पढे। भारतीय कवियो ने लिखा है कि सिह की कमर सदा बहुत छोटी, दुबली-पतली तथा नाममात्र की चित्रित की जाती है। सिह की कमर चित्रित करने की कोई आवश्यकता नही।"

अब तो नाई ने रंगत बदली। उसने सुई दूर फेक कर कहा—"फिर तो आप सिह गुदवा चुके।"

यह एक मानव है जो अपना जन्म सिंह राशि मे हुआ बताता है। वह बड़ा पहलवान है। बहुत बड़ा व्यायाम करने वाला है। वह

अपने वक्ष पर सिंह गुदवाना चाहता है। परन्तु सुई की चुभन उससे सही नहीं जाती।

—अधिकांश मनुष्य इसी प्रकार के होते है। जो कष्ट-सहन से इस प्रकार भयभीत होते हैं, वे संसार के साधारण जीवन में भी विजयी नही हो सकते। ईश्वर का—अनन्त सत्य का ज्ञान प्राप्त करना तो बहुत दूर की बात है।

यदि ईश्वर का अनुभव करना चाहते हो, तो तुम्हें अपनी प्यारी से प्यारी इच्छा को कुर्बान करना होगा, अपनी प्यारी से प्यारी वासना को काटना होगा, अपनी आसक्ति को मिटा डालना होगा।

जब तक सदाचार रूपी सिंह को अपने हृदय में नही गुदवा लेते, जब तक इस चित्र को अंकित करने का कष्ट आप नही सहन कर लेते, तब तक आपका जीवन शुभ, निर्मल, उदात्त तथा अनुकरणीय नही बन सकता।